भारतवर्ष का इतिहास

(प्रथम भाग)

लेखक—

वेदव्यास, एम० ए०, एल० एल० बी०

सोल एजेन्ट—

मेहरचन्द्र लच्मणदास

संस्कृत-हिन्दी पुस्तक विक्रेता

सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर.

संशोधित संस्करण] १९३२ [मूल्य एक रुपया

प्रकाशक—

नवजीवन प्रेस,

मैक्लेगन रोड, लाहौर।

मुद्रक—

मलिक हरभगवानदास महरोत्रा,

नवजीवन प्रेस, मैक्लेगन रोड, लाहौर।

विषय सूची

विषय	पृष्ठ

११. [illegible]हमूद [illegible]ज़नवी (९९७-१०३०) १४७-१५२

१२. उत्तरी भारत पर मुसल्मानों की विजय १५३-१६०

विषय	पृष्ठ

१३. दिल्ली की सुल्ताशाही १६१-१६५

१४. खिलजी वंश (१२९० १३२०) १६६-१७०

१५. तुग़लक वंश १७१-१७८

भारतवर्ष का इतिहास

(प्राचीन युग)

देश और उसके निवासी

भारत क्या है?—भारतवर्ष, इतिहास की दृष्टि से, एशिया महादेश में एक विस्तृत उपमहाद्वीप को सूचित करता है, जो कि आकृति में एक विसम त्रिकोण है। यह हिमालय और कन्याकुमारी के बीच में स्थित है और पश्चिम में बिलोचिस्तान और पूर्व में बर्मा तक फैला हुआ है। उत्तर में यह बाक़ी एशिया से बड़ी-बड़ी पर्वत-मालाओं और उनकी शाखाओं द्वारा अलग किया जाता है, जो इसकी पूरी सीमा में उत्तर-पूर्व से उत्तर-पश्चिम तक फैली हुई हैं। दक्षिण में यह ३४०० मील के समुद्र-तट से घिरा हुआ है। इस प्रकार जल और थल द्वारा अन्य देशों से अलग होकर भारतवर्ष अपनी देशिक सत्ता को सूचित करता है। इस के चारों ओर प्राकृतिक सीमाएँ हैं। भारत के स्पष्ट रूप से तीन भाग हैं—हिमालय, उत्तरीय भारत का विस्तृत मैदान और दक्षिण का

भारत एक भूखण्ड

तीन भाग

प्रायद्वीप, जिसे दक्खन कहते हैं।

हिमालय—हिमालय भारत के प्राकृतिक भूगोल का एक परम महत्व-पूर्ण अंग है। इस देश की उत्तरी सीमा पर प्रायः अनेक अभेद्य पर्वत-मालाओं का बाड़ा लगा हुआ है, जो एक-दूसरे के समानान्तर १५०० मील तक चली गई हैं। उस के ऊँचे शिखर, जिन के दूसरी ओर तिब्बत का रेगिस्तान है, उत्तर भारत के मैदानों के संतरी हैं। इस अगम्य पर्वत-माला के कारण भारत और चीन में किसी तरह का राजनैतिक सम्बन्ध स्थापित होना असम्भव-सा रहा है। उत्तर की ओर से आने वाले आक्रमणकारियों से रक्षा करने के अतिरिक्त भारत-निवासियों को भाग्यशाली बनाने में इन का बड़ा भारी असर है। इन पर्वतों में जैसा कि हम आगे चल कर देखेंगे, एकमात्र घाटियां उन स्थानों में हैं, जहाँ उन की श्रेणियां भारत को उस के पश्चिमी पड़ोसियों से अलग करती हैं।

बाहरी आक्रमण रोकने वाला

भारतवर्ष हमेशा से कृषि-प्रधान देश रहा है। इस की सब से बड़ी पूँजी उपजाऊ ज़मीन है और इस के लिए सब से बड़ा मंगल बर्साती हवाएँ-मानसून हैं। इन ऊँचे पहाड़ों के कारण पानी-भरे बादल यहीं बरस जाते हैं, और दूसरे देशों को नहीं जाने पाते। और ये दोनों प्रसाद बहुत कुछ हिमालय पर्वत के कारण हैं। इन बर्फीली पर्वतमालाओं की समानन्तर दोहरी दीवारों के बीच से सिन्धु, गंगा, ब्रह्मपुत्र और उन की सहायक नदियाँ तथा अन्य अनेक बड़ी-बड़ी नदियाँ निकलती

कृषि का सहायक

हैं। कालान्तर में उन्हों ने अपनी घाटियों को समृद्ध, सुसम्पन्न मिट्टी की उपजाऊ तह से ढक लिया। ये अनन्त और शाश्वत जल-राशि के स्रोत हैं। इन्हीं की बदौलत नहरों से आश्चर्यजनक सिंचाई सम्भव हो गई है। इस के अतिरिक्त ये पर्वत उत्तर की ओर से आने वाली ठण्डी हवाओं को रोकते हैं और महासागर की ओर से आते हुए मानसूनों को उत्तर की ओर जाने से रोकते हैं।

उस के महानद

उत्तर-पश्चिम की ओर जाकर पर्वत-मालाएँ दक्षिण की ओर झुक जाती हैं और सुलेमान पर्वत-श्रेणी तथा अन्य पर्वतों को जन्म देती हैं, जो भारत को अफ़ग़ानिस्तान और बिलोचिस्तान से अलग करते हैं। पर्वत-मालाओं के बीच २ में दर्रे बन गए हैं जिनमें से होकर हमला करने वालों के दल के दल इस ओर भारत के उपजाऊ देश पर अधिकार करने के लिए आते रहे हैं। ये दर्रे सिंध की ओर जाती हुई नदियों की घाटियों के कारण बने हैं। उन के नाम भी अधिकतर उन नदियों के नाम पर ही हैं। सब से मशहूर दर्रों में से एक दर्रा .खैबर का है जो काबुल से पेशावर तक काबुल नामी नदी की घाटी के साथ-साथ जाता है। दूसरा दर्रा कुर्रम का है, जो कुर्रम नदी की घाटी से बना है और अफ़ग़ानिस्तान से बन्नू तक का मार्ग खोलता है। एक दर्रा टोची नदी की घाटी का है जो ग़ज़नी को अंगरेज़ी राज्य की सीमा से मिलाता है। गोमल का दर्रा डेरा इस्माईलखां तक है और बोलन का दर्रा

उत्तर-पश्चिम के दर्रे

सिंध से कंधार तक है; आजकल इस प्रदेश की चौकसी के लिए क्वेटा का किला है।

भारत पर स्थल से चढ़ाई करने वालों का इन्हीं में से कोई न कोई रास्ता रहा है। ये भारत आने के लिए द्वार हैं।

इसी प्रकार उत्तर-पूर्व कोण पर हिमालय की पर्वतशाखाएँ दक्षिण-पूर्व की ओर चली जाती हैं जिस के कारण बर्मा भारत से अलग हो जाता है। इधर भी कुछ दर्रे हैं, पर ये ऊँचे स्थान पर हैं और घने जंगलों से भरे हुए हैं, इसलिए इस ओर से आना जाना हमेशा से बहुत कम रहा है।

उत्तरी भारत के मैदान—सिंध और गंगा और उनकी सहायक नदियों की तलहटियों को सुविधा के लिए इस प्रकार बांटा जा सकता है:—

१ पंजाब—सिन्ध से यमुना के बीच का प्रदेश पंजाब है। सीमा पर होने के कारण पश्चिमोत्तर से होने वाली हर चढ़ाइयों का पहिला धक्का इसने सहा है। दक्षिण पंजाब भारत के इतिहास के कई अत्यन्त भाग्य-निश्चयात्मक युद्धों का मैदान रहा है।

पंजाब

२ गंगा की तलहटी—गंगा की तलहटी व ठेठ हिन्दुस्तान, दिल्ली से पटना तक फैला हुआ है। भारतीय इतिहास की महत्वपूर्ण घटनाओं का यह रंगमंच रहा है। यहीं पर बहुत से साम्राज्यों का उत्थान और पतन हुआ

गंगा की तलहटी

है। यह प्रदेश सभ्यता और संस्कृति का घर रहा है।

गंगा की तलहटी के पश्चिम की ओर राजपूताने का लम्बा-चौड़ा रेगिस्तान है जो मुसलमान आक्रमणों के तांतों को बहुत कुछ निष्फल करता रहा। अपने शक्तिशाली शत्रुओं से तंग आकर राजपूतों ने रेगिस्तान में आश्रय लिया और उस की सुरक्षित स्थिति से वे उन का सामना अच्छी तरह करने में समर्थ हो सके।

राजपूताना

इस विशाल देश के लोगों का आचार-व्यवहार स्थल विशेष के जलवायु की भिन्नता के कारण एक-दूसरे से भिन्न रहा है। सिंध की मरु-भूमि और पंजाब की जलवायु अच्छी है और वहां बहुत परिश्रम करने से अन्न उत्पन्न होता है। इसी कारण यहां के लोग मज़बूत और लड़ाके होते हैं। ज्यों-ज्यों हम पूर्व की ओर बढ़ते जाते हैं, त्यों-त्यों जल की बहुतायत होती जाती है। इसी कारण यहां की आबोहवा अधिकाधिक आर्द्र होती जाती है, और आबादी घनी होती जाती है और आदमी कमज़ोर होते जाते हैं। ज़मीन के उपजाऊ होने से आराम और विलास बढ़ता है और थोड़े से परिश्रम से खेती तैयार हो जाने से लोगों को वह कड़ी मेहनत करने की ज़रूरत नहीं होती जिस से बदन सख्त होता है। यहां का जलवायु दुर्बल करने वाला है, और इसी कारण—इतिहास में हमेशा पुरानी बातों की पुनरावृत्ति होती है—एक के बाद दूसरी जाति ने एक-दूसरे पर विजय प्राप्त

जलवायु के अनुसार आचार-व्यवहार में अन्तर

की, अपना राज्य स्थापित किया और कुछ दिन रहने के बाद वे अपनी स्वाभाविक ताक़त और वह बहादुरी खो बैठे, और उनकी जगह नए आक्रमणकारियों ने आकर छीन ली।

दक्षिण—भारत में हिमालय के बाद विन्ध्याचल का महत्व है। इसके द्वारा दक्खन, ठेठ हिन्दुस्तान से अलग होता है। दक्खन त्रिकोनी-अधित्यका (tableland) है जिसका झुकाव पूर्व की ओर है; इसी कारण दक्षिण की सारी बड़ी-बड़ी नदियां बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। उत्तरीय भारत की नदियों में नावें आदि चलाई जा सकती हैं, पर दक्षिण की नदियों में यह सम्भव नहीं है।

भारत के इतिहास में दक्षिण का गौण स्थान

दक्षिण हमेशा से एक भिन्न प्रदेश रहा है, और भारत के इतिहास में उसका गौण स्थान रहा है। उत्तरीय भारत के शासकों द्वारा दक्खन बहुत कम बार जीता गया और उस समय भी उन का अधिकार नाममात्र को ही होता था। पर उत्तरीय भारत की सभ्यता का प्रभाव दक्षिण पर अधिक गहरा और स्थायी पड़ा है। यद्यपि दक्षिण भारत की जातियों ने अपनी भाषा और जाति की बहुत-सी विशेषताओं को कायम रक्खा है, पर हिन्दुत्व को विशेषतः धार्मिक क्षेत्र में अपना लिया है। विदेशी आक्रमणों से दक्षिण को बहुत कम आशंका थी, अतः दक्षिण के राज्य, और राज्यों की अपेक्षा, अधिक स्थायी रह सके।

समुद्र-तट और घाट—भारत के समुद्र-तट की ओर

आरम्भ में लोगों की दृष्टि अधिक आकर्षित नहीं हुई। पश्चिम की ओर समुद्र-तट के समानान्तर पर पश्चिमी घाट ७०० मील तक अटूट लाइन चली गई है। उनकी चोटियों पर प्रायः अगम्य दुर्ग बने हुए हैं जिन से सुरक्षित होकर मराठों ने अपनी बढ़ती के दिनों में मुग़लों का मुकाबला किया था। इसके विपरीत पूर्व की ओर के समुद्र-तट पर कोई अच्छा बन्दरगाह नहीं था और खतरनाक उथला जल उस की रक्षा करता था। समुद्र के इस किनारे पर बाहर से लोगों का आना नहीं हो रहा था, पर यहां के लोगों में प्रवास का आन्दोलन चल रहा था जिस के चिन्ह सुमात्रा, जावा, लंका और बर्मा में ही नहीं, बल्कि स्याम और इन्दोचीन तथा बोर्नियो और बाली जैसे दूरवर्ती द्वीपों में भी मिलते हैं। १४६८ में वास्को-डे-गामा के पश्चिमी तट पर आगमन से भारत के इतिहास में एक नवीन युग का जन्म हुआ।

पूर्वी तट से देश-त्याग

भारतीय संस्कृति का स्थायित्व—उत्तरीय भारत बहुत सीमा तक और दक्षिणी भारत पूरी तरह बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के स्वतन्त्रता पूर्वक अपनी सभ्यता को प्रकृत रूप में विकसित करते रहे। बाहरी आक्रमण तो बहुत दिनों के अन्तर से होते थे। पर उस दशा में भी समूची जातियों का प्रस्थान कभी नहीं हुआ और पहिले के निवासी कभी पूर्णता से नष्ट नहीं किए गए। इस के विपरीत आक्रमणकारियों के दलों ने विजितों में ऊँचा स्थान प्राप्त किया।

बाह्य प्रभाव से अलग

इस प्रकार हम भारत में सभ्यता के विकास में उल्लेख योग्य निरन्तरता को पाते हैं। पर देश की प्राकृतिक रुकावटों के कारण एक केन्द्रित साम्राज्य कायम न हो सका। हां, पिछली शताब्दी की वैज्ञानिक खोजों ने ऐसी बाधाओं के ऊपर विजय प्राप्त कर ली है।

नस्लें—आकार में भारत रूस को निकाल कर बाकी सारे यूरोप के समान है। इस में ३५,३६,००,००० की आबादी है। इस भारी आबादी को नस्लों के लिहाज़ से इस तरह बांट सकते हैं—

भारतीय-चीनी

१—इण्डो चाइनीज या मंगोल और आर्य रक्त के मिश्रण से बनी जातियां और उपजातियां, जो आसाम की पहाड़ियों, सिक्किम, अल्मोड़ा, गढ़वाल, भूटान, और नैपाल में बसती हैं।

मुण्डा या कोलार

२—मुंडा या कोलर जातियां, जिनके प्रतिनिधि शिकार करने वाले कबीले हैं, जो छोटा नागपुर के कुछ हिस्सों में, उड़ीसा, उत्तर-पूर्व मद्रास और मध्य-भारत के छत्तीसगढ़ आदि में पाई जाती हैं।

द्रविड़

३—द्रविड़ जो सारे दक्षिणी प्राय द्वीप में आबाद हैं, और—

भारतीय-यूरोपियन

४—भारतीय-यूरोपियन जाति जो उत्तर-भारत में प्रधान है।

नस्लों की मिलावट बहुत दिनों से जारी है और हम आर्य्य-द्रविड़ और मंगोल-द्रविड़ आदि जातियों को आसानी से पहचान

नस्लों का मिश्रण

सकते हैं। उत्तर भारत में भी, संयुक्त प्रान्त और पूरब की ओर चल कर वहां के लोगों में काफ़ी द्रविड़ रक्त मिला हुआ है। बिलोचिस्तान और उत्तर-पश्चिम सीमान्त प्रदेश के निवासियों में तुर्क-ईरान की मिश्रित नस्ल का भी अंश पाया जाता है।

अनन्त भिन्नता—प्राकृतिक और मानव दृष्टि-कोण से भी भारत विभिन्नताओं का देश है। परले सिरे की सर्द और गर्म जलवायु, हर तरह की वनस्पति, हर तरह के पशु-पक्षी, मानव संस्कृति की हरएक अवस्था और असंख्य नस्लों के आदमी देश के विभिन्न प्रान्तों में दीख पड़ते हैं। धर्म और जाति से समाज सैकड़ों टुकड़ों में बँट गया है और जैसा कि स्वाभाविक था, भाषाओं की विभिन्नता की भी कमी नहीं है।

आधारभूत एकता—दिखाई देने वाली इतनी विभिन्नता के होते हुए भी इतिहास का मननशील विद्यार्थी एक आधारभूत एकता के दर्शन किए बिना नहीं रह सकता। यद्यपि देश में राजनैतिक एकता, बीच-बीच में कुछ दिनों को छोड़ कर, कभी स्थापित नहीं हो सकी, पर पुराने समय से यह सब का आदर्श रहा है। भारत की विभिन्न जातियों ने कालान्तर में एक ऐसी अपूर्व

संस्कृति की विलक्षणता

संस्कृति व सभ्यता को विकसित किया जो संसार की सारी संस्कृतियों से भिन्न थी। इस प्रकार जाति, नस्ल और भाषा का भेद रहते हुए भी यह आधारभूत एकता अच्छी तरह प्रकट होजाती है।

सारांश

प्राकृतिक स्थिति और उसका प्रभाव—भारत स्पष्टरूप से तीन भागों में बांटा जा सकता है—

१ हिमालय—(अ) स्वाभाविक सीमा को बनाता है, और प्रहरी के समान रक्षा करता है। (ब) भारत की बड़ी-बड़ी नदियों का यह उद्गम स्थान है। भारत की ठंडी हवाओं से रक्षा करता है। दक्षिण से आनेवाली बरसाती मानसून हवाओं को दूसरे देशों में जाने से रोकता है। इस प्रकार जमीन और आब-हवा पर इसका बड़ा असर है। (स) पश्चिमोत्तर के दर्रे भारत पर चढ़ाई करने वाले के लिए द्वार का काम करते रहे हैं।

२ विस्तृत मैदान—(अ) पंजाब, सीमाप्रान्त का भाग होने के कारण, भारत की लड़ाइयों का मैदान रहा है। (ब) गंगा का मैदान बड़े-बड़े साम्राज्यों, धर्म और संस्कृति का स्थान रहा है। (स) राजपूताने के रेगिस्तान ने किसी हद तक मुसलमानों के आक्रमणों को रोका है।

इन प्रदेशों के निवासियों का जीवन, आबहवा की भिन्नता के अनुसार, भिन्न-भिन्न है।

३ दक्खन—विन्ध्याचल पहाड़ इसे उत्तरीय भारत से अलग करता है। यह एक अलग देश रहा है। वाह्य आक्रमणों से बहुत कुछ बचा रहा है, इस कारण इस ने गोण भाग लिया है।

नस्लें—(१) इण्डो चाइनीज़, (२) मुण्डा (३) द्रविड़ियन

और (४) भारतीय-यूरोपियन। प्राचीन काल से इन जातियों का सिश्रण होता आ रहा है।

प्रश्न

१. भारत की प्राकृतिक स्थिति का इसके इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा ?

२. भारत को किन तीन परस्पर विभिन्न भागों में बांटा जा सकता है ? प्रत्येक भाग का भारत के इतिहास में क्या स्थान रहा ?

३. भारत की जनता में कौन २ सी नस्लें शामिल हैं ?

४. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो:—
   पहाड़ी दर्रे, भारत का समुद्री तट।

५. भारत का ग्रेट ब्रिटेन से निम्नलिखित बातों में मिलान करो—
   (१) बाहरी हमलों से प्राकृतिक संरक्षण,
   (२) राष्ट्रीय जीवन की एकता।

६. भारत की महत्वपूर्ण प्राकृतिक स्थिति का उल्लेख करो और बताओ, कि उस का यहां के निवासियों और इस के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा है ?

भारतीय-आर्य

भारत के मूल निवासी—भारत के इतिहास के सब से प्राचीन काल में सारे देश में जंगली जातियां रहती थीं। उनमें से बहुत-सी अब तक मौजूद हैं। कुछ ने जैसे राजपूताना के भीलों ने हिन्दू सभ्यता के प्रभाव से अपनी स्थिति कुछ-कुछ सुधार ली है; पर टोडा और गोंड आदि जातियां अब भी उसी असभ्य दशा में रहती हैं। ये जातियां आजकल पहाड़ी या अन्य दुर्गम प्रदेशों में पाई जाती हैं। अब भी ये अपने निजीयुग में—संसार की सभ्यता के पाषाण युग में रहती हैं, पत्थरों के हथियार इस्तेमाल करती हैं, धनुष-बाण से शिकार खेलती हैं और अपने प्रारम्भिक काल के धार्मिक विश्वासों को मानती चली आती हैं।

जंगली टोडा जाति

टोडा और गोंड

द्रविड़—इतिहास से पहिले के समय से ही, पूर्व और

पश्चिम से आक्रमणकारी देश में आते रहे हैं। पूर्व की ओर से आनेवालों ने यद्यपि भारत की नस्लों और उस की भाषाओं को अवश्य प्रभावित किया, पर उन्होंने अपनी साहित्यक अथवा संस्कृति सम्बन्धी उन्नति का कोई इतिहास नहीं छोड़ा है। इसके विपरीत पश्चिम की ओर से आने वालों ने सारे देश के आचार-विचार को एक निश्चित रूप दे दिया।

आर्य्यों के आने से पहिले देश में द्रविड़ों का आधिपत्य था। उनका मूलस्थान अनिश्चित है। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि

अनिश्चित उद्भव

वे इस देश के आदिम निवासी थे। पर इस मत की पुष्टि, कि वे उत्तर-पश्चिम से आए, इस बात से होती है कि बिलोचिस्तान की भाषा ब्राहुई (Brahui) द्रविड़ियन भाषा के परिवार से सम्बन्ध रखती है। वे छोटे कद

द्रविड़ संस्कृति

वाले, काले रंग के, शान्त स्वभाव और तीव्र बुद्धि के होते थे। उन्होंने खेती-बाड़ी में काफ़ी तरक्की कर ली थी, और वे धातु का उपयोग करना और मकान बनाना भी जानते थे। वे सामुद्रिक जीवन के अभ्यस्त थे, वे समुद्र से भयभीत नहीं होते थे। उन की अनेक सुविकसित भाषाएँ थीं, जिन में तामिल भाषा और उस का उत्कृष्ट काव्य विशेष उल्लेखनीय है। जब आर्य्यों ने देश पर धावा किया तो द्रविड़ों ने उन का अपनी पूरी शक्ति के साथ मुकाबला किया। यद्यपि शारीरिक दृष्टि से वे कमज़ोर थे पर वे कोई साधारण शत्रु न थे। बहुत दिनों तक घोर लड़ाइयां होती रहीं, और केवल धीरे-धीरे ही आर्य्य लोग देश

के स्वामी हो सके। द्राविड़ों ने आर्य्य धर्म तो स्वीकार कर लिया, पर अपनी भाषा, सामाजिक रीति-रिवाज वही रक्खे। इस में किसी तरह का सन्देह नहीं किया जा सकता कि उनका भी आर्य्य-संस्कृति पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है।

हाल की खुदाइयां—पंजाब और सिंध में हाल की खुदाइयों से दबे शहर निकले हैं जो पांच हज़ार साल पुराने होंगे। इस से अच्छी तरह साबित हो गया कि सिंध की तलहटी किसी ज़माने में एक बड़ी सभ्यता की जगह थी। इन खोजों से भारत के प्रारम्भिक काल के इतिहास में एक नया और अलिखित प्रकरण जुड़ गया है। पर अभी खोदने का काम जारी है, इसलिए उन की अधिक चर्चा करना समयोचित न होगा।

सिन्ध की तलहटी किसी समय उच्च सभ्यता का घर

भारतीय-यूरोपियन—पर भारत के इतिहास में सब से अधिक महत्वपूर्ण घटना, आर्य्यों का भारत में आना है, जो मूलतः इण्डो-यूरोपियन भारतीय-यूरोपियन नामक विशाल जातियों से सम्बन्धित थे। यदि हम अंगरेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, लैटिन, यूनानी, रूसी, फ़ारसी और संस्कृत के पारिवारिक जीवन में काम आने वाले दैनिक व्यवहार के शब्दों का आपस में मिलान करें तो उन में आश्चर्य्यजनक समानता दिखाई देगी। संस्कृत के "पितृ" और "मातृ" शब्द वास्तव में फ़ारसी के "पिदर", "मादर", लैटिन के "पेटर", "माटर", यूनानी के "पेटेर", "मेटेर", अंग्रेज़ी के

"फ़ादर", मदर" और जर्मन के "नाटर", "मटर" जैसे ही हैं। इन भाषाओं की व्याकरण सम्बन्धी बनावट में यद्यपि इतनी स्पष्टता नहीं है, पर समानता अवश्य है। इन सब बातों के कारण केवल यही कहा जा सकता है कि इन सब भाषाओं के बोलने वालों के पुरखे किसी पुराने समय में एक साथ रहे होंगे। पर वे एक साथ किस समय और कहां रहे, यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। आम राय है कि सब का मूल निवास-स्थान मध्य एशिया रहा होगा। वे सभ्यता की ओर इसी समय से बढ़ने शुरू हो गए थे। उन की भाषा वैदिक भाषा से बहुत कुछ मिलती जुलती थी।

उनका असली निवास-स्थान

आर्य—ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, इण्डो-यूरोपियनों की संख्या में वृद्धि होती गई और उनके अपने देश में रहने की जगह और जीवन की आवश्यकताओं की कमी होती गई। उन की बहुत-सी शाखाएँ विभिन्न दिशाओं में चली गईं और एशिया और यूरोप के उपजाऊ हिस्सों में जाकर आबाद हो गईं। इन में से पूर्व की ओर बसने वाली शाखा आर्य्य नाम से प्रसिद्ध हुई। वे बहुत समय तक साथ-साथ रहे और एकसी बोली बोलते रहे। जब ये अलग होने लगे तो एक शाखा फ़ारस में जाकर बस गई और दूसरी शाखा और भी पूर्व की ओर चली गई। उस ने हिन्दूकुश पार करके पंजाब या पांच नदियों के देश में प्रवेश किया। अब उनका यहां के मूल निवासियों के साथ लगातार

मूल निवासियों के साथ संघर्ष

युद्ध होना शुरू हुआ। आर्य्य वैसे संख्या में थोड़े थे, पर ताक़तवर थे, और लड़ाई के काम में भी होशियार थे। उन के हथियार अधिक असर करने वाले थे और साथ ही वे घोड़ों और रथों का भी व्यवहार करते थे। अनेक ख़ूनी विजयों के बाद आर्य्यों ने अपने विरोधियों को जीत लिया। इनका, इनके और साथियों ने अनुसरण किया, उन के लिए यह जगह छोड़कर ये गंगा के मैदान की ओर बढ़ गए।

भारतीय आर्य्य—ये नए विजेता, जो हमारे निकट 'इण्डो-आर्यन' नाम से परिचित हैं, साहसी और बहादुर आदमी थे। इन का कद लम्बा और रंग गोरा था। उन की सामाजिक पद्धति पितृमूलक Patriachical थी। इन के यहां पिता, जो परिवार का मुखिया होता था; परिवार-सम्बन्धी सब मामलों में अन्तिम निर्णायक होता था। उन का जीवन सरल और ऊँचा था। स्त्रियों का बड़ा आदर था और उन को बहुत स्वतन्त्रता प्राप्त थी। पठन-पाठन में भाग लेने के साथ-साथ उन में से कुछ धार्मिक विवादों में भी भाग लेती थीं। बिना पत्नी के धार्मिक संस्कार नहीं हो सकते थे। वर्तमान काल में हिन्दू-समाज में प्रचलित बुराइयां उस समय न थीं। जाति-पांति आज जिस प्रकार मौजूद है, उस समय के आर्यों के कबीलों में नहीं थी।

सामाजिक जीवन

पंजाब में आने के समय आर्य्य लोग बहुत से कबीलों में बँटे हुए थे। हर एक कबीले में कई बस्तियां—मण्डल

राजनैतिक जीवन

थी, और हरएक बस्ती में कई एक गांव थे। कबीले का मुखिया जिसे राजा कहा जाता था कबीले की सभा द्वारा चुना जाता था। इस सभा का नाम समित्ति था। राजा को सहायता देने के लिए चुने हुए आदमियों की 'सभा' होती थी। पर धीरे-धीरे ये सब पद वंशानुगत और परम्परागत होते गए। आर्य्य लोग मुख्य

पेशे

रूप से किसानों की एक जाति थे। इस लिए इन का धन, खेत, अनाज और पशु थे। पर इस से यह ख्याल न होना चाहिए, कि खेती ही एकमात्र आर्यों का पेशा था। आर्य लोग सूत कातने और कपड़ा बुनने में बहुत चतुर थे। धातुओं के उपयोग के ज्ञान से भली प्रकार परिचित थे। बढ़ई, लुहार और सुनार समाज में आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।

उनकी धर्म-पुस्तकें और उनका धर्म—इण्डो-आर्य्यों की धर्म-पुस्तकें वेद कहलाती हैं, जो 'विद् ज्ञाने' धातु से बना है,

वेद

जिसका अर्थ है जानना। हिन्दुओं का विश्वास है कि वेद ईश्वरकृत हैं या अनन्त ज्ञान प्राप्ति के लिए ईश्वरीय प्रकाश हैं। वे सरल और सुन्दर भाषा में लिखे गए हैं और संख्या में चार हैं। ऋग्वेद में १०१७ सूक्त हैं जो अनेक छन्दों

ऋग्वेद

में रचे गए हैं और जिन में विशेष कर इन्द्र, वरुण, अग्नि और अन्य प्रकृति-सम्बन्धी देवताओं की प्रार्थनाएँ की गई हैं। यह सम्भवतः संसार की सारी पुस्तकों में सब से पुरानी हैं और विश्व-साहित्य में आदरणीय स्थान रखती हैं। धर्म और भाषा के इतिहास का ज्ञान प्राप्त करने के लिए

सामवेद यजु-वेंद, अथर्ववेद

यह बड़े महत्व की हैं। भारतवर्ष के इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह हिन्दुधर्म के नियमों की नींव होने की दृष्टि से बड़े महत्व की हैं। सामवेद में गान-संग्रह है, यजुर्वेद में यज्ञ-बलि के विधान हैं, और अथर्ववेद में कुछ दार्शनिक सिद्धान्तों के अतिरिक्त रीतियों, संस्कारों और रोग को दूर करने वाले मन्त्रों का विवरण है।

आर्य्य, प्रकृति की शक्तियों की ओर आकर्षित हुए। प्रकृति ने उनकी कल्पना-शक्ति को बहुत प्रभावित किया। उनका धर्म सरल

धर्म

और कवितामय था। यज्ञ उन के धर्म का आवश्यक अङ्ग था। आर्य्य यह अनुभव करने लगे थे कि प्रकृति के विभिन्न दृश्य एक ही महाशक्ति के अनेक स्वरूप हैं। एक स्थल पर कहा गया है—"वह एक है, बुद्धिमान उसे अनेक नामों से पुकारते हैं।" उपनिषदों के दार्शनिक विचारों का यही मूल मालूम होता है। अथर्ववेद का एक सुन्दर गान मातृभूमि की प्रशंसा में है। अक्सर प्रार्थनाएँ देखने को मिलती हैं—"हमारे घोड़े मज़बूत हों, हमारी गायों की संख्या बढ़े, और हमारी सन्तान शक्तिशाली हो।" एक दूसरे स्थान पर प्रार्थना है:—"हम सब एक उद्देश्य से चलें, हम सब एक उद्देश्य से बोलें, और हम सब की वाणी और मन एक हों।"

वेद का निर्माण काल—इस विषय पर विद्वानों में बड़ा मतभेद है। अनेक विद्वानों की सम्मति में वैदिक काल ६००० वर्ष से १२०० ई० पूर्व तक है। जो कुछ हमें

वैदिक काल की तिथियां अनिश्चित

ज्ञान है, उसके आधार पर हम यह मान सकते हैं कि वेद का काल किसी अज्ञात अतीत काल से लेकर ५०० ई० पूर्व तक था। प्रसिद्ध जर्मन विद्वान विन्टरनिट्ज का कहना है, कि इस विषय में जितनी तिथियां आजकल दी जाती हैं उन में से एक भी साबित नहीं की जा सकती।

इण्डो आर्य्यों का आगे बढ़ना—पंजाब से आर्य्य गंगा के मैदान की तलहटी की ओर बढ़े। उनकी आगे बढ़ने की रफ्तार

मन्द गति से आगे बढ़ना

धीमी थी, इस से इस में काफी अधिक समय लगा। जिन्होंने उनका विरोध किया उनका उन्होंने विनाश कर दिया, पर जिन्होंने उनकी आधीनता स्वीकार करली उन्हें उन्होंने अपने समाज में मिला लिया, यद्यपि उन्हें निस्सन्देह नीची निगाह से देखा जाता था। आर्य्यों की इस बढ़ती ने उनके जीवन, आचार-व्यवहार और संस्कृति में भी बहुत परिवर्तन कर दिए। उन की पूजा और उपासना दिनों-दिन धार्मिक रीतियों और विधि-विधानों को पूरा करने का रूप धारण करती जाती थीं। पुरोहितों की महत्ता बढ़ी और वे अपने अधिकार जतलाने लगे। प्रारम्भिक कबीलों का सरल जीवन अब नष्ट होता जा रहा था। शक्तिशाली राज्य कायम किए गए जो प्रबल राजाओं द्वारा शासित थे। महाभारत के महान् युद्ध में पांचाल और कुरु प्रधान विरोधी दल थे। देश

राज्य स्थापना

के इस भाग में बसने के बाद, जिसे वह मध्य-देश कहते थे, उन की कुछ शाखाएँ विहार में गई

जहां कोशल और विदेह नामके शक्तिशाली राज्य स्थापित हुए। उन की राजधानियां रामायण में वर्णित अयोध्या और मिथिला थीं। इन्द्रप्रस्थ, हस्तिनापुर, मथुरा, कान्यकुब्ज, उज्जैन और मध्यकालीन भारत के अन्य शहर इसी समय से प्रसिद्ध हो चले थे। इन राजसत्तात्मक राज्यों के साथ ही साथ छोटे-छोटे प्रजातंत्र राज्य भी पूर्व और पश्चिम में दोनों ओर विकसित और उन्नत हो रहे थे। इन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास में महत्वपूर्ण काम किया है। नागरिक जीवन बड़ी शीघ्रता के साथ विकसित हो रहा था। अनार्य्यों के साथ घनिष्ठ सम्पर्क के कारण आर्य्य जाति के सामने अब नई समस्याएँ उपस्थित होने लगी थीं, और इसी के फल स्वरूप वर्ण-व्यवस्था स्थापित हुई।

नगर

वर्ण-व्यवस्था—वर्ण-व्यवस्था हिन्दु धर्म का आधार और सार रूप है। बाहर से दबाने वाली शक्तियों के प्रति आक्रान्त आर्य्यों का यह उत्तर था। यह वह साधन था, जिसके द्वारा उन्होंने अपने समाज में आए हुए विभिन्न कबीलों और गिरोहों को सभ्य और संस्कृत बनाया और इस के साथ अपनी खून की पवित्रता की रक्षा की। हिन्दू धर्म में विजातियों को अपने में मिलाने की बड़ी शक्ति थी। नए आने वाले, हिन्दू धर्म में मिल तो सकते थे, पर उन्हें एक नया वर्ग बनाना पड़ता था। उन्हें ब्राह्मणों का शासन मानना पड़ता था, पर वह शासन बहुत साधारण और उदार होता था।

वर्ण-व्यवस्था विदेशी जातियों को हिन्दू बनाने में सहायक

वर्ण-व्यवस्था की उत्पत्ति—धीरे-धीरे द्रविड़ों ने आर्य्यों के आचार-व्यवहार, रीति-रिवाज और धर्म को अपना लिया पर उन को समानता की नज़र से नहीं देखा जाता था। वर्ण-व्यवस्था का मूल विचार जातियों की भिन्नता के कारण, जो रंगों (वर्णों) से सूचित होता था, उत्पन्न हुआ। गोरे रंग के आक्रमणकारी अपने को आर्य्य कहते थे, और काले रंग के द्रविड़, दस्यु कहलाते थे। बाद को आर्य्य-जाति चार भागों में पेशे के अनुसार बँट गई—ब्राह्मण, या पुरोहित और विद्वान् लोग, जो विद्या और ज्ञान का प्रचार करते थे। क्षत्रिय या योद्धा, वैश्य या व्यापारी और कृषक, और फिर शूद्र या सब से निचली जाति, जिसका काम ऊँची जाति वालों की सेवा करना था। शूद्र जाति में आर्य्य-जाति से पतित लोग और वे विजित आदिम निवासी थे, जिन्हों ने आर्य्य-सभ्यता और प्रभुता को स्वीकार कर लिया था।

रंग और कर्म वर्ण-व्यवस्था का आधार

इस प्रकार वर्ण-व्यवस्था आरम्भ में एक साधारण-सी बात थी, जिस की नींव पेशे तथा जाति की भिन्नता पर पड़ी थी। यह वर्ण-व्यवस्था बहुत कड़ी नहीं थी। एक जाति से दूसरी जाति में सम्मिलित होना कठिन न था।

वर्ण-व्यवस्था का विकास

पर ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, हर एक वर्ण का धर्म भी अधिक कड़ा होता गया। जाति-प्रथा बिल्कुल वंश-परम्परा की

वर्ण-व्यवस्था ने वंश-परम्परागत रूप धारण कर लिया और जातियों की संख्या में शीघ्रता से वृद्धि होने लगी

चीज़ हो गई। एक जाति से दूसरी जाति में जाना धीरे-धीरे कठिन से-कठिनतर, और अन्त में असम्भव हो गया। जातियों के भेद दिन पर दिन बढ़ने लगे और अन्त में उन में हज़ारों वर्ग स्थापित होगए जिनका एक दूसरे के साथ कोई सम्बन्ध न रहा। जाति की वृद्धि के अनेक कारण थे। हरएक कबीले और गिरोह–संघ ने अपनी अलग जाति बना ली। शुद्ध हुए विदेशियों का अलग एक वर्ग बन गया। नस्लों के मिलाप के फल-स्वरूप असंख्य नवीन जातियां बन गईं। एक नवीन और अलग जाति की स्थापना के लिए कुछ लोगों का, रीति-रिवाज और पेशे में परिवर्तन और नवीन धार्मिक विचारों का अपनाना ही काफ़ी था।

वर्ण-व्यवस्था की मौजूदा हालत को देख कर जाति को ऐसे अनेक परिवारों का एक समूह कह सकते हैं जिनमें परस्पर

आजकल की वर्ण-व्यवस्था।

घनिष्ठ सम्बन्ध हो, पर जो जीवन की पवित्रता के कठोर विधानों से विशेष कर विवाह और भोजन के मामले में दूसरे समूहों से अलग कर दिए गए हों।

वर्ण-व्यवस्था के गुण—वर्ण-व्यवस्था का सब से प्रधान

वर्ण-व्यवस्था विस्तार के लिए सहायक हुई

गुण यह है कि उसने हिन्दू धर्म को व्यापक बनाया, हिन्दुओं की संख्या बढ़ाने में सहायता दी, इसके साथ ही साथ युगों

के निरन्तर संघर्ष और सम्मिलन के घपले में उस के मौलिक भाव और उसकी शिक्षाएँ वैसी ही सुरक्षित बनी रहीं।

(१) इसी असाधारण संस्था के द्वारा यह सम्भव हो सका कि विदेशी आक्रमणकारियों की जातियों पर जातियां, हिन्दू धर्म में मिलती चली गईं और धीरे-धीरे उसका आवश्यक अंग होगईं। इस वर्ण-व्यवस्था के अनुसार द्रविड़ और अन्य पूर्व निवासी भी नवीन जाति के द्वार-मार्गों से हिन्दू-धर्म में प्रविष्ट हुए। नए आए हुए सब लोगों को इस में शामिल होने की इजाज़त दे दी गई, पर उन के लिए यह आवश्यक था कि वे अपनी अलग जाति बना कर रहें।

वर्ण-व्यवस्था हिन्दू धर्म को सुरक्षित रख सकी

(२) भिन्न-भिन्न पेशे, भिन्न-भिन्न जातियों के हाथ में थे। इस तरह हरएक पेशे के वंशानुगत समूह बन गए। इस से हरएक पेशे और शिल्प की कारीगरी और चतुराई तथा कला की रक्षा हुई और उन के प्रबल संघ बन गए। इस के द्वारा वे अपने अधिकारों की रक्षा करते थे और अपने काम को सुव्यवस्थित करते थे।

(३) वर्ण-व्यवस्था ने हिन्दू जाति को मज़बूत बनाया। यह इस कारण सम्भव हुआ, कि हर एक जाति को अपनी जाति के लिए गर्व था और इस का हर एक सभ्य आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध से सम्बन्धित था। इस्लाम के शक्तिशाली प्रभाव के होते हुए भी यदि आज हिन्दू-धर्म के आचार, व्यवहार, नैतिक जीवन और

कला के भाव सुरक्षित हैं, तो इसका प्रधान कारण वर्ण-व्यवस्था द्वारा उत्पन्न स्थिरता और दृढ़ता ही है।

वर्ण-व्यवस्था के दोष—(१) वर्ण-व्यवस्था से लाभ ही लाभ हुए ऐसी बात नहीं है। समाज को हज़ारों टुकड़ों में बांट कर इसने हिन्दुओं के लिए यह असम्भव कर दिया, कि सब मिलकर एक प्रबल राष्ट्र बनाएँ। सारे भारत की दृष्टि से, इतनी अधिक जातियों की सत्ता अनैक्यता का कारण हुई है, यद्यपि ये अपने में परस्पर मिले हुए थे।

सामाजिक विभाग उन्नति में रुकावटें पैदा करने वाले

(२) जाति के हर एक आदमी को कठोर नियमों और जाति के बन्धनों से इस तरह बांध दिया गया कि उसे कुछ भी करने की स्वतन्त्रता नहीं रही।

(३) इस व्यवस्था ने ऊँची जातियों के अन्दर जात्याभिमान उत्पन्न कर दिया। ये लोग अपने से निचली जातियों को घृणा से देखने लगे और उन पर अत्याचार करते और उन्हें दबाते रहे। जब तक यह जात्याभिमान वर्तमान है, मनुष्य और मनुष्य के अन्दर, बन्धुत्व का भाव कभी नहीं पनप सकता। इसलिए आज सुधारों के मार्ग में वर्ण-व्यवस्था सब से अधिक बाधक और सब से बड़ी अड़चन है।

बाद का धार्मिक साहित्य—ब्राह्मण, वेदों के ऊपर गद्य में, सविस्तार व्याख्या है। इनका उद्देश्य यज्ञ का उद्भव और अर्थ बताना है। उन में पौराणिक

ब्राह्मण

आख्यानों की बहुतायत है। इस से मालूम होता है, कि ब्राह्मणों का दिमाग़ यज्ञों को विधानों से जटिल और अधिक खर्चीला बनाने में लगा हुआ था। इस बढ़ती हुई साहित्य राशि को ऐसे रूप में रखना आवश्यक हुआ जिस में उसे सुगमता के साथ हृदयङ्गम किया जा सके। यह एक अत्यन्त चतुरतापूर्ण आविष्कार द्वारा सम्भव हो गया। सूत्रों के द्वारा बहुत थोड़े से शब्दों में बहुत-सी बात कहना सम्भव हो गया। बाद को विद्या की हरएक शाखा में इसी सूत्र-शैली को अपनाया गया। इस विधान-साहित्य के बाद ही उपनिषदों के रूप में ऊँची दार्शनिक उड़ान का युग आगया। उस समय के श्रेष्ठ मस्तिष्क, जीवन और संसार के रहस्य की खोज में, लगे हुए थे। उपनिषदों में अज्ञात की समस्या को हल करने की चेष्टा की गई है। उनकी भाषा सरल और सुन्दर है और अटल सच्चाइयों को ज़ोरदार और उदात्त शब्दों में प्रकट करते हैं। वे उसी समय से सदा हिन्दू-जाति के मस्तिष्क को प्रोत्साहित करते आए हैं। हिन्दू-धर्म से बाहर के भी अनेक विद्वान उन पर हृदय से मुग्ध हैं।

जटिल विधि-विधान

सूत्र

उपनिषद्

दर्शन शास्त्र—उपनिषदों के सिद्धान्तों को भारत के छः प्रकार की दार्शनिक पद्धतियों ने निश्चित रूप दे दिया। कर्म और पुनर्जन्म की बात को सब ने मान लिया। अब बड़ी भारी समस्या यह थी कि जन्म और मृत्यु के अनन्त चक्र—आवागमन

से मुक्ति पाने का कौन सा मार्ग है।

कपिल के सांख्य शास्त्र के अनुसार प्रकृति अनादि काल से है और उसकी सत्ता असंख्य जीवों की सत्ता से स्वतन्त्र है। सांख्य दर्शन को पतंजलि ने योग दर्शन में एक नए रूप में रक्खा, जो विशेषकर योग से अर्थात् परमात्मा में मन लगाने से सम्बन्ध रखता है। गौतम का न्याय दर्शन मुख्यतः तर्क करने का तरीका बताता है। कणाद के वैशेषिक दर्शन के अनुसार यह सारा ब्रह्माण्ड नित्य परमाणुओं से बना है। जैमिनी का पूर्व मीमांसा वैदिक यज्ञ-विधानों के, उचित रीति से, करने पर ज़ोर देता है। व्यास का उत्तर मीमांसा जो वेदान्त कहलाता है, उपनिषदों के आधार पर बना है और उसके अनुसार ब्रह्म विश्व-व्यापिनी आत्मा है जिस से सब निकले हैं और जिस में सब लय हो जाएँगे।

वेदांत

वेदांग और उपनिषद्—वैदिक साहित्य की अन्य शाखाएँ छः वेदांग अर्थात् शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष हैं; और चार उपवेद, अर्थात् आयुर्वेद, गन्धर्ववेद धनुर्वेद और अर्थवेद हैं।

वीर काव्य—इसी काल में संस्कृत जो पहिले से ही सुन्दर और बहुत परिष्कृत भाषा थी, पूर्णता की चरम सीमा पर पहुँच गई। एक भव्य काव्य-साहित्य की सृष्टि हुई जिसके कि व्यास का महाभारत और बाल्मीकि की रामायण दो बड़े वीर-काव्य अत्यन्त उत्कृष्ट उदाहरण हैं। उनकी कथाएँ इतनी प्रसिद्ध हैं कि

उन को यहां पर दोहराना अनावश्यक होगा। वे सदा से हिन्दुओं के आदर्शों पर अक्षय प्रबल नैतिक प्रभाव डालते रहे हैं और डाल रहे हैं। ये वीर-काव्य लोगों की स्मृति में कथा कहनेवाले भाटों से जागृत रक्खे गए हैं जिन को (छोटे बड़े सभी) एकटक होकर सुनते थे। इस प्रकार सहस्रों वर्षों से वे जनसाधारण की शिक्षा के लिए महान् साधन सिद्ध हुए हैं। ये वीर-काव्य प्राचीन भारत का सजीव और रोचक चित्र भी हमारे सामने रखते हैं। महाभारत हिन्दू-धर्म का विश्व कोष है।

जनता की शिक्षा के महान् साधन

महाभारत कई पीढ़ियों की रचना है और ठीक ही हिन्दू ज्ञान का विश्व कोष माना गया है। उस में प्रधान कथा के साथ अनेक मनोहर आख्यान और बहुत-सी महत्वपूर्ण उपदेशमय कविताएँ भरी पड़ी हैं। इनमें सब से अधिक उल्लेखनीय भगवद्गीता है जो कि कुरुक्षेत्र की रणभूमि में भगवान कृष्ण का अर्जुन के प्रति दिव्य उपदेश माना जाता है। यह भारतीय विचार सृष्टि की अत्यन्त उत्कृष्ट और लोक-प्रिय रचनाओं में एक है और संसार के साहित्य में पूजनीय स्थान रखती है। आज भी वह करोड़ों हिन्दुओं से पढ़ी जाती और पूजा की दृष्टि से देखी जाती है; यही नहीं, सहस्रों विदेशियों का भी उस के प्रति यही भाव है। इस का यूरोप की प्रायः सब भाषाओं में अनुवाद हो गया है।

भगवद्गीता

मनुस्मृति (मानव धर्मशास्त्र)—मनु का धर्मशास्त्र एक

बड़ा भारी साहित्यक कोष है। यद्यपि उस का अन्तिम रूप में संकलन बहुत पीछे हुआ है तथापि इस का आधार प्राचीन लेख हैं। इस ग्रन्थ में, वर्ण-व्यवस्था के अच्छी तरह से विकसित, सुदृढ़ और पूर्णरूप से संगठित होने के बाद के हिन्दू-जाति और हिन्दू-धर्म के मूल तत्त्वों और विशेषताओं का उल्लेख किया गया है। उसमें हर एक जाति के धर्मों का विधान किया गया और हर एक

मानव जीवन-की चार अवस्थाएं

व्यक्ति के जीवन को चार आश्रमों व अवस्थाओं में बांटा गया है। पहिला ब्रह्मचर्य आश्रम है, जिस में शारीरिक और मानसिक शिक्षा के साथ शरीर और मन पर नियन्त्रण करना और उनको अनुशासन में रखना, नियत किया गया है। निरंकुश जीवन को धर्म के सांचे में ढाला गया है। शिष्य अविवाहित रहकर एक निश्चित समय तक गुरु के घर विद्याध्यन करता है जहां उसे वे कलाएं और विज्ञान सिखाए जाते हैं जो उस के लिए भावी जीवन में उपयोगी होंगे।

दूसरा आश्रम गृहस्थ धर्म का है। मनुष्यों को गृहस्थ बनने का प्रोत्साहन दिया गया है। जो कोई विवाह से पीछे हटता है उस की उपमा लड़ाई से भाग जानेवाले मनुष्य से दी गई है। विवाह-सम्बन्ध को पवित्र माना गया है। राम और सीता या सावित्री और सत्यवान् के पारस्परिक सम्बन्ध को जिस की उन्हों ने सारे संसार के विरुद्ध होने पर भी रक्षा की, आदर्श रूप से स्थापित किया गया है। आठ भिन्न भिन्न प्रकार के विवाहों को माना गया है।

एक-पत्नी-विवाह की प्रथा को ही आदर्श माना गया है। विवाह सम्बन्ध अविच्छिन्न माना गया है। स्त्रियों को पुरुषों के हरएक कार्य्य में अर्द्धांगिनी माना गया है।

तीसरी अवस्था वानप्रस्थ की है। गृहस्थ की चिंता छोड़ कर स्त्री-पुरुष कोलाहलपूर्ण संसार से बाहर जंगल में जीवन की अधिक महत्वपूर्ण समस्याओं का चिन्तन करने चले जाते हैं।

जीवन के मार्ग का अंतिम अंश अकेले तय करना पड़ता है। संन्यास-धर्म का लक्ष्य पूर्ण आत्मिक स्वतंत्रता प्राप्त करना है।

सारांश

आर्य—प्राचीन समय मे मध्य एशिया में इण्डो यूरोपियन नामक जाति रहती थी। इन की पूर्वीय शाखा—आर्य लोग पर्शिया और भारत में आकर बस गए। भारत में आर्य लोगों को द्रविड़ों से भयंकर लड़ाई लड़नी पड़ी। अन्त में आर्य लोग विजयी हुए। क्योंकि युद्ध-विद्या में वे लोग अधिक चतुर थे।

भारतीय आर्य और उन की सभ्यता—सामाजिक जीवन—पितृमूलक-जीवन सरल, और उच्च वेश-भूषा, संगीत और नृत्य के प्रेमी तथा स्त्रियों की अच्छी स्थिति थी।

राजनैतिक जीवन—वे कबीलों में बंटे हुए थे। हरेक कबीले का एक राजा होता था, इस की सहायता के लिए एक सभा होती थी।

पेशा—मुख्य रूप से खेतिहरों की एक जाति थी, वे सूत कातना, कपड़ा बुनना, और धातुओं का उपयोग जानते थे।

धार्मिक-पुस्तकें—चार वेद—ऋग्वेद सब से पुरानी पुस्तक है। इस में १०१७ मन्त्र हैं। यजुर्वेद यज्ञों के लिए, साम संगीत, और अथर्ववेद रोग और बुराई को दूर करने के साधन बताता है।

धर्म—आर्य लोग प्राकृतिक शक्तियों से आकर्षित हुए थे, पर उन में वे एक परमात्मा की भिन्न-भिन्न शक्तियों का प्रकाश देखते थे। यज्ञ उन के धर्म का एक आवश्यक अंग था।

बढ़ाव—आर्य लोग गंगा की घाटी (मध्यदेश) की ओर बढ़े। उन में बहुत हेर-फेर होगया था। (१) यज्ञ जटिल होते जाते थे, इस प्रकार ब्राह्मण पुरोहितों का प्रभुत्व बढ़ रहा था। (२) कबीले राज्य का रूप धारण कर रहे थे और बहुत से बड़े-बड़े शहर बस गए थे। (३) वर्ण-व्यवस्था का विकास हो रहा था।

वर्ण-व्यवस्था—पहिले वर्ण—रंग-पर इसका आधार था, फिर पेशे पर और बाद में जन्म इस का आधार रहा। चार वर्ण—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। वर्तमान समय में इनके सिवाय हजारों समूह बन गए हैं।

गुण—(१) इस ने हिन्दू-जाति को अपनी संख्या बढ़ाने में सहायता दी और फिर भी हिन्दू धर्म के मूल तत्त्व कायम रखने में समर्थ हुई, (२) हिन्दू जाति की स्थिरता बढ़ाई, (३) कारीगरी की रक्षा हुई।

दोष—(१) अनैक्यता का यह कारण हुई (२) व्यक्तिगत स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध लग गया (३) राष्ट्रीय उन्नति और सामा-

जिक सुधार में बाधा पैदा की, (४) पीछे छोटी श्रेणी के लोगों पर इस के कारण अत्याचार हुआ।

बाद का धार्मिक साहित्य—(१) ब्राह्मण—वेदों की गद्य में टीका, (२) सूत्र—संक्षेप में बात कही गई। (३) उपनिषद—अज्ञात संसार की समस्याओं को सुन्दर और मनोमोहक भाषा और तरीके से हल किया गया है, इसमें उच्चविचार हैं (४) वेदाङ्ग और उपवेद (५) दर्शनशास्त्र—कपिल का सांख्य दर्शन, पतंजलि का योगदर्शन, गौतम का न्यायदर्शन, कणाद का वैशेषिक, जैमिनी की पूर्वमीमांसा और व्यास का वेदान्त दर्शन (६) वीर-काव्य—रामायण और महाभारत—जन-साधारण की शिक्षा का बड़ा भारी साधन है, भगवद्गीता—भारतीय विचारों में से सब से अधिक उदात्त और उत्कृष्ट और सर्वप्रिय ग्रन्थ (७) मनुस्मृति—हिन्दु कानून की पुस्तक—समाज को चार भागों में वर्णाश्रम-व्यवस्था के अनुसार बांटता है। हरएक के जीवन को चार भागों में बांटता है—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास, ।

प्रश्न

१. आर्य्य कौन थे? भारतीय-आर्यों के पेशों और रीति-रिवाज का संक्षिप्त विवरण लिखो।
२. भारतीय-आर्य्यों की धर्म-पुस्तकों के विषय में तुम क्या जानते हो? इन पुस्तकों से उनके अनुयायियों के धार्मिक विश्वासों पर क्या प्रकाश पड़ता है?

३. वर्ण-व्यवस्था से तुम क्या समझते हो? साथ ही संक्षेप से लिखो, कि वर्ण-व्यवस्था का उद्भव कैसे हुआ? उसके गुण और दोष दिखाओ।

४. निम्न लिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो:—
उपनिषद्, वीरकाव्य, हिन्दू दर्शन के छः विभाग, और मानव-धर्मशास्त्र।

५. भारत में आर्यों के आने से पहिले रहने वालों के बारे में क्या जानते हो, उसे संक्षेप में लिखो? कब और कहां से आर्य लोग यहां आए? (पं० यू० १६२७)

६. प्राचीन आर्यों के शासन-विधान, धर्म और सामाजिक रीति-रिवाजों के बारे में क्या जानते हो? संक्षेप से लिखो। (पं० यू० १६२८)

७. वे कौन से मौलिक साधन हैं, जिनके द्वारा प्राचीन आर्यों के बारे में ज्ञान प्राप्त करते हैं? (पं० यू० १६२८)

बौद्धमत और जैनमत

धार्मिक क्रान्ति—हम देख ही चुके हैं, कि ब्राह्मण पुरोहितों के यज्ञ शीघ्रता के साथ बहुत जटिल और बहुत खर्चीले होते जारहे थे। साधारण आदमी बड़े-बड़े यज्ञ करने का खर्च नहीं सह सकता था। ब्राह्मणों का धर्म अब से संस्कार-प्रधान और कठोर होता जा रहा था और उस का जनसाधारण से सम्बन्ध छूटता जा रहा था। इस समय ब्राह्मण-धर्म जनसाधारण के हृदय को अपील नहीं कर रहा था। बहुत से लोगों के हृदयों में यज्ञों में पशु-बलि देख कर इस से घृणा और अरुचि हो गई थी। वर्ण-व्यवस्था दिन पर दिन कठोर होती जा रही थी।

विरुद्ध भावनाएं

बस, ब्राह्मणों का ही चारों ओर प्रभुत्व था और इस के विरुद्ध विद्रोह का उत्पन्न होना स्वाभाविक था। उस विद्रोह के चिन्ह उपनिषदों में मिलते हैं।

छठी शताब्दी ई० पूर्व भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था।

लोगों के हृदय, जीवन और मृत्यु की समस्या से, उद्वेलित हो उठे थे। सांसारिक बन्धनों से छुटकारा पाने का प्रबल प्रयत्न जारी था। इसी ज़माने में बिहार के दो राजकुमारों ने दो नवीन शक्तिशाली मतों की नींव डाली जो आज तक बौद्धमत और जैनमत के नाम से प्रसिद्ध हैं। यद्यपि दोनों राजकुमार एक ही जगह पैदा हुए थे और दोनों ने एक ही ढंग से प्रचार किया था, पर उनके मतों की बिल्कुल भिन्न गति हुई। जैनमत भारत से बाहर कभी नहीं गया, और अब भी वह एक सम्पन्न और प्रभावशाली जाति का धर्म है। बौद्धमत भारत में पन्द्रह सौ वर्षों तक खूब फला फूला, पर बाद को उसका अस्तित्व अपनी जन्म-भूमि से लुप्त हो गया। आजकल वह संसार की सब से बड़ी धार्मिक शक्तियों में-से एक है और लंका, बर्मा, स्याम, तिब्बत, मंगोलिया, चीन और जापान में विभिन्न रूपों में माना जाता है।

धार्मिक विचारों में नवीनता।

(बौद्धमत

यह महान् धर्म गौतम बुद्ध (६२३ ई० पू० से ५४३ ई० पू० तक) द्वारा स्थापित किया गया। संसार के इतिहास में गौतम जैसा कोई आदमी नहीं गुज़रा, जिसने लोगों के दिलों पर इतना गहरा सिक्का बिठा दिया हो। उस के महत्वपूर्ण जीवन की सुन्दरता एशिया के उत्कृष्ट शिल्प का प्रधान विषय रही है। इस धर्म ने संसार के असंख्य हृदयों में शांति प्रदान की है और भविष्य में भी बहुत से लोगों को शांति का पाठ पढ़ाएगा।

बुद्ध की जीवनी—२५०० वर्ष गुज़रे हिमालय की

तलहटी में कपिलवस्तु नाम का एक छोटा-सा शहर आबाद था। यह कोशलों के विशाल साम्राज्य का एक भाग था, और इस पर शाक्य नामी एक शक्तिशालिनी क्षत्रिय जाति स्वतन्त्रता पूर्वक शासन करती थी। इस राज्य की प्रजा का शासक बड़ा नेक और

बाल्यकाल

वृद्ध था। उस के बुढ़ापे में एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। राजकुमार का नाम सिद्धार्थ रक्खा गया और उसे विलासता की गोद में पाला-पोसा गया। पर उसने और राज-कुमारों के समान खेलों और मनोविनोदों में कोई रुचि नहीं दिखाई। इसके विपरीत वह और लोगों से अलग-सा रहने लगा। उसके शान्त नेत्र हमेशा ध्यान-मग्न रहते। यह सब को विदित था कि वह बाहरी दुनियां से सम्बन्ध तोड़ कर भीतरी दुनिया के ध्यान में लगा रहता था।

वृद्ध महाराज को अपने लड़के के इन विचित्र आचरणों को देख कर आशंका हुई। उन्होंने उसे इस उदासीनता से युवास्था

चिड़िया फंस गई

के प्रेम की ओर लाने का निश्चय किया। उस ने उसके लिए यशोधरा नाम की एक सुन्दरी और स्वस्थ, पवित्र और साध्वी राज-कन्या प्राप्त करने की बात सोची। पर राजकुमार उसे केवल अपनी निपुणता से ही पा सकता था। एक खास दिन सारे शाक्य युवकों को चुनौती दी गई कि वे तीरन्दाज़ी, घुड़सवारी, और वीरता के अन्य हुनर दिखाएँ। सिद्धार्थ सब परीक्षाओं में बाज़ी ले गया और उसका रूपवती राजकुमारी के साथ विवाह कर दिया गया। वृद्ध पिता ने

कहा:—"बस, अब हमने अपनी चिड़िया को फांस लिया है। प्रेम की मधुर झंकार से उस के नीरव हृदय में स्पन्दन उत्पन्न हो जाएगा।"

अब राजा ने निश्चय किया कि उसका पुत्र एक सुन्दर उद्यान में रहे, जहां संसार के दुःख-शोक उसके पास न फटक सकें।

आमोदमय उद्यान में बंदी किया गया

सिद्धार्थ को शोक, मृत्यु या वृद्धावस्था का कोई चिन्ह न देखने दिया जाता था। पर इस विलास और नृत्य के जीवन में युवक राजकुमार हरी घास पर बैठा हुआ ध्यान में मग्न रहता और सामने सदा खड़े रहने वाले पर्वतों की ओर एकटक दृष्टि से देखता रहता। वह विलासता के इन अनन्त आवर्तों से ऊब गया था।

एक दिन सिद्धार्थ रथ पर शहर में घूमने के लिए निकला। राजा ने इस बात का पूरा बन्दोबस्त पहिले से ही कर रक्खा

जीवन की अस्थिरता

था कि राजकुमार के मार्ग में दुःख और शोक का कोई भी चिन्ह दिखाई न पड़े। पर निर्दय अदृष्ट उनके इन विफल प्रयत्नों पर हँस दिया। जब राजकुमार सड़कों में-से निकला तो उस ने एक कोने में एक दुबला-पतला कमज़ोर बुड्ढा आदमी देखा, जिस की कमर झुकी हुई थी, बाल पक गए थे और लाठी के सहारे वहां खड़ा था। इस दृश्य ने राजकुमार के हृदय में, जिसने अब तक सुन्दरता के अलावा और कुछ नहीं देखा था, आन्दोलन मचा दिया। उस ने भयभीत होकर सारथी से चिल्लाकर कहा—"चन्न, यह

कैसा आदमी है, क्या सचमुच आदमी यह हो सकता है ?"

"राजकुमार, यह बुढ़ापा है। यही गया-गुज़रा आदमी किसी समय अपनी मां के वक्षःस्थल में एक सुन्दर बच्चा था, फिर वह रूपवान लड़का हुआ और फिर बहादुर और खूबसूरत जवान हुआ। पर बुढ़ापे ने उसका पीछा कर उसे इस कष्ट और दुःख की दशा में डाल दिया है।"

"और यही दशा मेरे महान् पिता की भी होगी ?"

"हां महाराज।"

"और मेरी सुन्दर स्त्री की भी ?"

"हां महाराज।"

"और मेरी भी ?"

यहां पर गम्भीर नीरवता छा गई।

"रथ को वापस करो। मैं आमोद-प्रमोद किस हृदय से करूंगा ? आनन्द के लिए जगह ही कहां है ? बस, जो कुछ मुझे देखना था, मैंने देख लिया।"

बेचारे पिता ने अपने पुत्र के महल में सुख की दूनी समग्री एकत्र कर दी। पर उसके पुत्र ने रमणीक उद्यानों में बन्द रहकर भी ध्यान और विचार करना आरम्भ किया। वह एक बार फिर गम्भीरता और उदासी की हालत में लोगों को देखने के लिए निकला। उसके मार्ग में एक बीमार आदमी पड़ा मृत्यु की घड़ियां गिन रहा था। उसका मुख सूज कर बिगड़ गया था। राजकुमार ने अपने आप से प्रश्न किया "क्या यह भी सबके भाग्य में आना

है ?" और वह पहिले से अधिक खिन्न होकर वापस चला आया। वह एक बार फिर भेजा गया। शहर खूब सजाया गया। पर उसे पहिले से अधिक भयंकर और दुःखप्रद दृश्य देखना बदा था। उसने कुछ लोगों को एक अर्थी ले जाते हुए देखा। राजकुमार ने इस भयानक दृश्य से अपने नेत्र बन्द करके अस्पष्ट स्वर में कहा "क्या यह भी सभी के भाग्य में बदा है ? ओह ! मर्त्य मनुष्यों का दुर्भाग्य, जो कष्ट और दुःख में पैदा हुए उनका, रोग शोक और बुढ़ापे से ऐसा भयानक हाल होता है।" बस राजकुमार ने जीवन की निःसारता देख ली थी। तब क्या इससे छुटकारा पाने के लिए वह एक बार प्रबल प्रयत्न कर न देखे ?

नई बेड़ी

उसके विवाह के दस साल बाद उसके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब यह हर्ष-दायक समाचार उस के पास लाया गया तो उस ने कांप कर कहा—"मेरे पैरों में एक और बेड़ी पड़ गई।"

महान् त्याग

अन्त में सिद्धार्थ ने शान्त और तपस्वी जीवन व्यतीत करने के लिए अपने राज-पाट के सुखों को लात मारने का निश्चय कर लिया। एक दिन अंधेरी रात को वह घर से निकल गया और फिर सात वर्ष बीतने पर बौद्ध भिक्षुकों के पीले वस्त्र पहने हुए लौटा। उस के विदा होने का दृश्य बड़ा मर्मस्पर्शी और हृदयद्रावक था। वह अपने बच्चे और स्त्री को अन्तिम बार देखने के लिए उस के संगमरमर के शयनागार में गया, जहां यशोधरा सोने के पलंग पर बालक को छाती से चिप-

The Buddha (Cambodia)
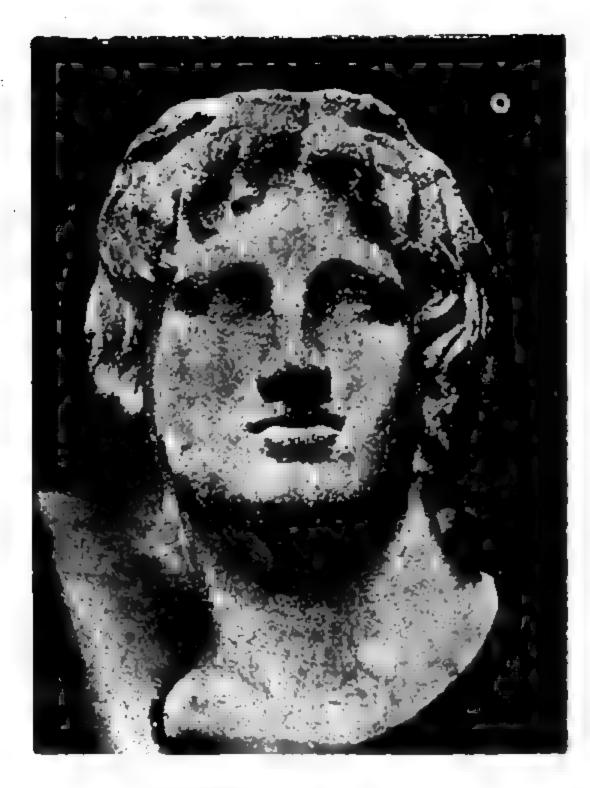
Alexander the Great

टाए मीठी नींद में सो रही थी। उस ने बच्चे को छाती से लगाने के लिए दो बार हाथ फैलाए पर इस आशंका से भयभीत होकर कि कहीं राजकुमारी अपने अन्तिम सुख-स्वप्न से जाग न पड़े, उस ने दोनों बार हाथ सिकोड़ लिए। इस प्रकार वह कुछ देर तक खड़ा रहा और फिर दबे पांव वहां से निकल आया।

सत्य की खोज

गौतम सत्य की खोज में कई साल तक जंगलों में भटकता फिरता रहा। वह ब्राह्मण दार्शनिकों के पास पहुँचा पर उनका सूखा अध्यात्म-वाद उसे सान्त्वना न दे सका। उस ने शरीर को कष्ट देने के लिए खूब कड़ा तप किया, पर उसे इतने पर भी जीवन का रहस्य न मिल सका। उसने इस तपस्या को छोड़ दिया और गया के पास वट के वृक्ष के नीचे बैठकर वह जीवन की समस्याओं पर विचार करने लगा। बस इसी वृक्ष के तले, जो कुछ शताब्दियों के बाद दूरस्थ देशों के बौद्ध भक्तों का परम पवित्र तीर्थ-स्थान होगया, उस की पवित्र

आत्मबोध

आत्मा में दिव्य ज्योति का आविर्भाव हुआ। उस ने जीवन के निगूढ़तम रहस्य और मुक्ति का मंत्र जान लिए। अब वह प्रबुद्ध बुद्ध था।

पर वह दिव्य ज्योति को अपने तक ही परिमित करना नहीं चाहता था। अज्ञानी मनुष्यों की पीड़ाओं और कष्टों से द्रवित

संघ-स्थापना

होकर उस ने लोगों को मुक्ति का मार्ग दिखाने का निश्चय किया। वह अपने उपदेश सुनाने के

लिए बनारस के निकट सारनाथ नामक स्थान में गया। सैकड़ों मनुष्य सुनने को एकत्र हो गए। उस ने भिक्षुओं का संघ स्थापित किया जिसे देश-भर में उस का सन्देश पहुँचाने का काम सौंपा गया। उस के उपदेश सरल थे और इसी कारण उनका जन-साधारण पर गहरा प्रभाव पड़ा।

वह बहुत वर्षों तक अपने अनुयाईयों के साथ इधर-उधर घूम कर धर्म का उपदेश देता रहा। उसे उसके पिता ने निमंत्रण दिया और उस की बहुत-सी प्रजा, जिन में उसकी पत्नी और पुत्र भी थे उस की अनुयायिनी हो गई। यहाँ पर हमें उनके पुनर्मिलन का मर्मस्पर्शी वृत्तांत मिलता है। राजकुमारी यशोधरा ने एक काषाय वस्त्रधारी बौद्ध भिक्षु की ओर संकेत करते हुए अपने पुत्र राहुल से कहा,—"ये तेरे पिता हैं, जा अपनी पैतृक सम्पत्ति मांग।" लड़का आश्चर्य, उत्सुकता और आशा के वशीभूत होकर उस के पास पहुँचा। उस ने उस महान् आचार्य का कपड़ा पकड़ कर अपना दाय-भाग मांगा। बुद्ध ने मुस्कराकर उसकी ओर मुँह फेरा और उसको भिक्षुओं का पीला चोगा दे दिया।

अस्सी वर्ष की आयु में बुद्ध ने अपनी जीवन-लीला समाप्त कर दी, पर उसका महान् कार्य्य समाप्त होने वाला नहीं था। उसका धर्म, उसके अनुयायी भिक्षु देश के कोने-कोने में फैलाते रहे। दो शताब्दी बाद इस धर्म को एक शक्तिशाली सम्राट् की संरक्षता प्राप्त हुई जिसने उसे राजधर्म बनाया और उसके संसारव्यापी धर्म बनने का रास्ता साफ़ कर दिया।

बुद्ध ने सूक्ष्म और जटिल दार्शनिक सिद्धान्तों की ओर कभी ध्यान नहीं दिया। उसका धर्म मुख्यतः व्यावहारिक था। जीवन के चिरंतन सत्य को, लोगों को उन्हीं की भाषाओं में समझाया जाता था। अन्य भारतीय दार्शनिकों की तरह उसने भी कर्म और पुनर्जन्म को मान लिया पर उसने ईश्वर के अस्तित्व की उपेक्षा की और वेदों के, जिन में ब्राह्मण निष्ठुर यज्ञों का होना बताते थे, अधिकार को अस्वीकार कर दिया।

उपदेश

वह यज्ञों की उपयोगिता पर विश्वास नहीं करता था और जात-पांत के भेदों को नहीं मानता था। जीवन को वह बहुत पवित्र मानता था, चाहे वह मानव जीवन हो व पशु-जीवन हो। इसी लिए उसने अहिंसा पर बड़ा ज़ोर दिया। पर उसके सिद्धान्त कोई नए न थे। उसी के शब्दों में वे इस प्रकार रक्खे जा सकते हैं।

विषय-वासनामय जीवन निकृष्ट और घृणित जीवन है। आत्म-पीड़न का जीवन अन्धकारमय और असत्य है और उसका फल कुछ नहीं है। सच्चा मार्ग बीच का है जिस में सत्य चिंतन, सत्य संकल्प, सत्य भाषण, सत्य आचरण, सत्य रहन-सहन, सत्य प्रयत्न, सत्य ध्यान और सत्यानन्द हैं।

अष्ट धर्म

इन सारे कष्टों की जड़ जन्म है; जीवन दुःख है, क्योंकि जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक अनेक कष्टों में-से होकर गुजरना मात्र है। जन्म लेने का कारण जीवन धारण करने की आकांक्षा है जो विषय-वासना से उत्पन्न होती है।

चार मार्ग

इस तृष्णा को बुझाने की एकमात्र औषधि कुवासनाओं का पूर्ण दलन और उदात्त अष्ट धर्म का पालन है।

बौद्ध मत का फैलाव—बौद्ध मत के इतनी जल्दी फैलने के कारणों का पता लगाना कोई कठिन बात नहीं है। इसके सिद्धान्त सरल थे। जटिल विधानों से रहित थे। इन का प्रचार ब्राह्मणों की परिष्कृत संस्कृत भाषा में न कर जन-साधारण की भाषा के द्वारा किया जाता था, इस लिए समाज का हरेक व्यक्ति इसे अच्छी तरह समझ सकता था। इस को सब ग्रहण कर सकते थे, विशेषतः इसने निम्न श्रेणी के लोगों के हृदयों को अपील किया, जो ब्राह्मणों के बहु-व्यय-साध्य यज्ञों से छुटकारा चाहते थे और इसके द्वारा वे ऊँची श्रेणियों के समान हो जाते थे। प्रवर्त्तक द्वारा स्थापित भिक्षु-संघ इस धर्म के प्रसार में बड़ा लाभदायक सिद्ध हुआ।

पर इन सब बातों के होते हुए भी बौद्धमत हिन्दू धर्म का एक महत्वपूर्ण अंश बन कर ही रह जाता यदि उसके महान् संरक्षक अशोक ने उसके प्रसार के लिए प्रबल प्रयत्न न किया होता।

जैनमत

महावीर—(५९९—५२७ ई० पूर्व)—महावीर भी अपने समय के दूसरे महापुरुष गौतम बुद्ध की तरह बिहार के एक क्षत्रिय राजा का लड़का था। अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में वह घर छोड़ कर निकल गया और पार्श्वनाथ का चेला हो गया। पर पार्श्वनाथ के संघ में प्रचलित नियमों से असंतुष्ट हो कर उसने

अपना निजी संघ कायम किया। उस समय उस की आयु चालीस साल की होगी। अपने जीवन के अवशिष्ट भाग में अर्थात् तीस वर्ष तक वह उत्तरी भारत के विभिन्न प्रान्तों मे उपदेश देता फिरा। अपनी माता के द्वारा रक्त सम्बन्ध से वह अनेक राजाओं से सम्बन्धित था, इस कारण धर्म-प्रचार में उन की सहायता प्राप्त कर सकता था। उस की मृत्यु के समय (५२७ ई० पूर्व) उस के अनुयाईयों की संख्या १०,००० बताई जाती है।

(**जैनमत के सिद्धान्त**—इस में ईश्वर के अस्तित्व से इन्कार किया गया है। ब्राह्मणों और वेदों के अधिकार को अस्वीकार किया गया है। मनुष्य के व्यक्तित्व में द्वैधीभाव है—उसका भौतिक और आध्यात्मिक गुण। कर्म और आवागमन की बात को माना गया है। जैन दर्शन गूढ़ सिद्धान्तों से भरा हुआ है। उस का मुख्य उद्देश्य आत्मा को उस के बन्धनों से सत्य धारणा, सत्य ज्ञान और सत्य कर्म नामक तीन रत्नों की सहायता से छुटकारा दिलाना है। आचरण-विज्ञान या व्यावहारिक नैतिक आचरण में अहिंसा,

अहिंसा

अर्थात् किसी भी प्राणी को चाहे वह विकासवाद की कितनी ही निम्न स्थिति में क्यों न हो, किसी प्रकार का कष्ट न देने को प्रधानता दी गई है।

जैन धर्म का वाद का इतिहास—ईसा सम्वत् के आरम्भ में जैन धर्म की दो शाखाएं हो गईं—श्वेताम्बर अर्थात् सफ़ेद वस्त्र धारण करने वाले, और दिगम्बर, अर्थात् आकाश के वस्त्र धारण

करने वाले—नंगे। उन्हों ने प्राकृत और संस्कृत में व्यापक साहित्य निर्माण किया और पश्चिमी भारत में अनेक भव्य भवन बनाए। उन्हों ने दक्षिण भारत को सभ्य बनाने में भी बहुत कुछ काम किया, जहां की तामिल और कनाड़ी भाषाओं को साहित्यक रूप देने का श्रेय बहुत कुछ जैन भिक्षुओं को है। अब भी जैन मतानुयायी अत्यन्त सम्पन्नावस्था में अनेक बड़े-बड़े शहरों में—विशेष कर पश्चिमी भारत में—रहते हैं।

सारांश

प्रतिक्रिया-प्रतिवर्त्तन—६०० ई० पू० भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था। बहु व्यय-साध्य यज्ञों से जनता ऊब गई थी और जीवन और संसार के दुःखों से छुटकारा चाहती थी। इस समय बौद्ध धर्म और जैन धर्म का उदय हुआ।

बुद्ध का जीवन—(६२५ ई० पू० से ५४३ ई० पूर्व) यह कपिलवस्तु में उत्पन्न हुआ। यह शाक्य वंशीय क्षत्रिय था। बचपन में ही विचारक था। इस का ध्यान इधर से हटाने के लिए इस के पिता ने एक सुन्दर युवती राजकुमारी से इसकी शादी कर दी। पर यह व्यर्थ था। बुद्ध ने दुःख के ऐसे चिन्ह देखे, कि उस का हृदय मनुष्यों के दुःखों से द्रवित होगया। सत्य की खोज में उस ने घर छोड़ने का निश्चय कर लिया। बहुत देर तक इधर-उधर भटकने के बाद गया में विशाल बोधि वृक्ष के नीचे ज्ञान प्राप्त किया और बुद्ध—ज्ञानवान—हो गया। अपनी शिक्षा के विस्तार के लिए उसने संघ बनाया और अपने धर्म का प्रचार

किया। अपने पिता के बुलाने पर प्रचार करते हुए वह कपिलवस्तु गया। ८० साल की अवस्था में मर गया।

(बुद्ध की शिक्षाएँ—ब्राह्मण-धर्म से भेद—बुद्ध कर्मचक्र और पुनर्जन्म में विश्वास रखता था, पर परमात्मा की सत्ता की उसने उपेक्षा की और वेदों के अधिकार को उस ने अस्वीकार किया। यज्ञों को उस ने निरुपयोगी बताया। वह वर्ण-व्यवस्था में विश्वास नहीं करता था। अहिंसा पर इस ने बड़ा बल दिया।

जीवन दुःखमय है—इस दुःख से बचने के लिए व्यक्ति को अपनी सब वासनाओं का अन्त करना चाहिए। वासनाओं का अन्त करने के लिए उदात्त अष्ट धर्म का सेवन करना चाहिए।

बौद्ध धर्म के विस्तार के कारण—(१) इसके सिद्धान्त सरल थे, (२) उनका प्रचार देश के जनसाधारण की भाषा द्वारा किया जाता था, (३) धर्म का द्वार ऊँच और नीच के लिए एक समान खुला हुआ था, (४) भिक्षु-संघ प्रचार का महत्वपूर्ण साधन था, (५) अशोक की संरक्षता ने पीछे इसको और बढ़ाया।

\जैन धर्म—इसका संस्थापक महावीर था। यह विहार के क्षत्रीय-परिवार का एक राजकुमार था। ५२७ ई० पू० में मर गया। पीछे से ये मत दो भागों में बँट गया।

\शिक्षाएँ—परमात्मा की सत्ता में अविश्वास प्रगट किया। ब्राह्मणों और वेदों के प्रभुत्व से उस ने इनकार कर दिया। कर्म और पुनर्जन्म के सिद्धान्त को माना। मनुष्य का व्यक्तित्व द्वैध है। मनुष्य की मुक्ति, सत्य धारणा, सत्य ज्ञान, सत्य कर्म, इन तीन

रत्नों से हो सकती है। बौद्ध-धर्म से भी ज़्यादा ज़ोर अहिंसा पर दिया।

प्रश्न

१. बुद्ध और महावीर का संक्षिप्त जीवन चरित्र लिखो।

२. बौद्धमत के उत्थान का क्या कारण था? प्राचीन धर्म की अपेक्षा इसमें क्या-क्या सुविधाएं थीं? शीघ्र-विस्तार का वृत्त लिखो।

३. बौद्ध मत के मुख्य उपदेशों का वर्णन करो और उसके शीघ्र फैलने का करण बताओ।

४. भिक्षु-संघ, धर्म, आठ प्रकार का मार्ग, और कर्म पर संक्षिप्त नोट लिखो।

५. बौद्ध और जैन धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की तुलना करने का प्रयत्न करो।

६. प्राचीन भारत में भिक्षुओं के जीवन और प्रभाव का वर्णन करो।

७. बुद्ध की संक्षिप्त जीवनी लिखो, उस के प्रचारित धर्म के सिद्धान्त लिखो। (पं० यू० १६२८)

८. ब्राह्मण-धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म के सिद्धान्तों की परस्पर तुलना करो।

९. अष्ट-धर्म की व्याख्या करते हुए इस पर एक नोट लिखो।

१०. महावीर का संक्षिप्त जीवन-चरित्र लिखो और जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त लिखो।

उत्तरी भारत की प्राचीन रियासतें

प्रजातन्त्र राज्य—सातवीं शताब्दी ईसा पूर्व के अन्त होते होते भारत का इतिहास कुछ अधिक निश्चित रूप धारण करने लगता है। उत्तरी भारत में अनेक रियासतें ऐसी थीं जो परस्पर मिलकर एक होना चाहती थीं और जिन में यह प्रवृत्ति निरन्तर काम कर रही थी। उन में अनेक प्रजातंत्र राज्य थे जिनमें से कुछ तो पूर्ण स्वतन्त्रता का आनन्द लेते थे और कुछ को थोड़ी बहुत परिमित स्वतन्त्रता प्राप्त थी। इस प्रकार के पन्द्रह प्रजातन्त्र राज्यों के नामों का उल्लेख मिलता है। उनका शासन-कार्य सार्वजनिक परिषदों के द्वारा होता था जिनके सभापति निर्वाचित नरेश होते थे। यद्यपि कभी-कभी इन राज्यों को तत्कालीन एक-सत्तात्मक शक्तिशाली राज्यों के आधीन रहना पड़ता था, तथापि उत्तर भारत की राजनीति में वे कई शताब्दियों तक बड़ा भाग लेते रहे। इन जातीय शासनों में वृज्जी कहलाने वाली आठ जातियों का शक्ति-

शाली सम्मिलित राज्य था। उनमें से लिच्छवि वंश ने भारत के इतिहास में एक हज़ार वर्ष से अधिक समय तक प्रधान भाग लिया। इनकी राजधानी वैशाली नामक एक विशाल नगर था जो दस बारह मील के घेरे में पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) से केवल २७ मील की दूरी पर बसा हुआ था।

लिच्छवि वंश

राज्य—उस समय के अनेक राज्यों में से कोशल, मगध, और उज्जैन के राज्यों के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इनमें से कोई राज्य सर्वोत्कृष्ट शक्ति को प्राप्त नहीं था और हर एक अपने दुर्बल पड़ोसी राज्यों को हज़्म करके अपनी-अपनी सीमा बढ़ा रहा था और हर एक आर्य्यावर्त्त की सर्वोत्कृष्ट शक्ति बनना चाहता था। बौद्ध-कालीन भारत में कोशल और सब से कहीं अधिक महत्वपूर्ण राज्य था। उसका विस्तार आज कल के फ्रांस से शायद ही कुछ कम रहा हो। अपने चार पीढ़ियों के शासन में इस राज्य ने अनेक छोटे-मोटे राज्यों और कुलों को मिला लिया था, और काशी के राज्य को पूरी तरह अधिकार में कर लिया था।

कोशल

मगध राज्य यद्यपि विस्तार में कोशल राज्य से बहुत छोटा था तथापि वह बड़ी शीघ्रता के साथ उन्नति कर रहा था। उसका शासक बिम्बिसार था, जो बुद्ध का समकालीन था। उसका अपने समय की अनेक शक्तिशाली रियासतों से विवाह-सम्बन्ध था। उसने अंग राज्य को भी मिला लिया था। उसे मगध की महत्ता का प्रवर्त्तक समझना चाहिए। उसके पुत्र

मगध

अजातशत्रु ने वृज्जी कहलाने वाले शक्तिशाली सम्मिलित राज्य पर आक्रमण किया और उसे सफलता हुई। इस अवसर पर उसने वर्तमान पटना के पास एक किला बनवाया जो आगे चल कर साम्राज्य की राजधानी के रूप में पाटलिपुत्र नाम से मशहूर हुआ। उसने कोशल राज्य के साथ बहुत दिनों तक भीषण और लगातार युद्ध जारी रक्खा जिसमें अन्त में उसी की विजय हुई। कोशल का लम्बा चौड़ा राज्य धीरे-धीरे उसी उन्नतिशील राज्य में आ मिला।

नन्द राजाओं के अधिकार में आने तक मगध ने उस के उत्तराधिकारियों की छत्रच्छाया में अपनी वही स्थिति बनाए रक्खी। नन्द राजा ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी में धनी और शक्तिशाली राजा हो चुके हैं। उन्हों ने कोशल, अवन्ती और कोशाम्बी के प्राचीन क्षत्रिय राज्यों को नष्ट करके अपनी शक्ति बढ़ाई। इस प्रकार उन के साम्राज्य में पंजाब और सिंध को छोड़ कर अधिकांश उत्तरी भारत सम्मिलित था।

अवन्ती

अवन्ती साम्राज्य की राजधानी उज्जैन थी। बुद्ध के समय में उस का शासक प्रद्योत था जिसे 'चण्ड' के नाम से पुकारा जाता था। उस के पास बड़ी शक्तिशालिनी सेना थी जिसे लेकर उसने अपने पड़ोसी राजा उदयन पर जो कोशाम्बी का शासक था, धावा कर दिया। बाद को उन का परस्पर विवाह सम्बन्ध होगया। अजातशत्रु तक को इस शक्तिशाली राजा के आक्रमण की आशंका से अपनी राजधानी की किलेबन्दी करनी पड़ी।

तक्षशिला की तरह उज्जैन भी विद्या और सभ्यता का प्रसिद्ध केन्द्र था। उस में व्यापार खूब होता था क्योंकि उस के अधिकार में पश्चिम की ओर के प्रसिद्ध समुद्रतट के मुफ़ीद मार्ग थे। आरम्भ से ही अवन्ती बौद्ध-धर्म का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। कुछ विद्वानों का विश्वास है कि बौद्ध-धर्म की प्रारम्भिक धर्म-पुस्तकों की रचना इसी देश की भाषा में हुई थी।

फ़ारस का धावा—ईसा पूर्व की सातवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में फ़ारस के सुयोग्य और स्वच्छन्द शासक डेरियस ने स्काई लाक्स की आधीनता में एक जहाज़ी बेड़ा सिंध नदी के तटवर्ती मार्ग का पता लगाने को भेजा। इस कार्य्य में ढाई साल लगे।

इस धावे के द्वारा डेरियस अपनी लम्बी चौड़ी सल्तनत में सिंध की घाटी और पञ्जाब का अधिकांश भाग शामिल करने में समर्थ हुआ। इन नए प्रदेशों को उस के साम्राज्य के सारे देशों में सब से अधिक धनी और सम्पन्न समझा जाता था और उनसे जितना कर मिलता था वह आजकल के दस लाख पौंडों से अधिक और सारे एशिया के साम्राज्य के सारे देशों के कर का तीसरा हिस्सा था। जब डेरियस के पुत्र ने यूनान पर धावा किया तो उस की विशाल सेना में भारत की सेना भी सम्मिलित थी। इन प्रदेशों पर फ़ारस की प्रभुता एक या एक से अधिक शताब्दी तक रही, पर यह ठीक तौर से नहीं कहा जा सकता कि उन पर से फ़ारस का शासन कब से उठ गया।

फ़ारस के साम्राज्य का भारतीय संस्कृति पर गहरा प्रभाव

पड़ा। सिकन्दर के समय में अनेक फ़ारसी व्यापारी तक्षशिला में व्यापार करते थे। यह भी विश्वास किया जाता है कि मौर्य काल की कला में फ़ारसी कला के प्रभाव के अनेक चिन्ह मिलते हैं।

सिकन्दर महान का आक्रमण—महान सिकन्दर ने, जो मैसीडोनिया का बादशाह और यूनान का स्वामी था, थोड़े से ही समय में एशिया माइनर, मिश्र और फ़ारस के विशाल साम्राज्य के अन्य प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। उसने अफ़गानिस्तान तक धावा बोल दिया और विजय प्राप्त की। ३२७ ई० पूर्व में इस युवक आक्रमणकारी ने अपने १२०००० चुने हुए सिपाहियों के साथ, हिन्दूकुश पार करके, भारत के विस्तृत और अज्ञात देश को विजय करने के इरादे से, उस पर धावा किया। अफ़ग़ानिस्तान की लड़ाकू जातियां जी खोलकर लड़ीं, पर नौ महीने की लगातार लड़ाई के बाद उन्हें नष्ट कर दिया गया और उन के पहाड़ी क़िलों पर अधिकार कर लिया गया। सिंध की घाटी की छोटी-छोटी रियासतें अपने ही झगड़ों में फंस रही थीं, उन्हें अपने और सब के समान शत्रु की ओर ध्यान देने का अवकाश कहाँ ?

तक्षशिला के राजा ने स्वागत किया

तक्षशिला का राजा आम्भात अपने पड़ोसी और शक्तिशाली राजा पोरस से जलता था, अतः जब सिकन्दर ने धावा किया तो उसने उसका खुले दिल से स्वागत किया और ५००० सैनिक सहायता के लिए दिए। अब सिकन्दर की सेना को कुछ दम लेने का मौका मिला; साथ ही तक्षशिला की सेना से उसका

बल और भी बढ़ गया। सिकन्दर पूर्व की ओर आगे बढ़ा। अगली चढ़ाई सिकन्दर की पोरस पर हुई जो जेहलम और चिनाब के बीच के प्रदेश का राजा था। पोरस को आत्म-समर्पण का संदेश भेजा गया। यदि सिकन्दर का यह .ख्याल रहा हो कि औरों की तरह पोरस भी चुपचाप आधीनता स्वीकार कर लेगा, तो उसे जल्दी ही अपनी भूल मालूम हो गई होगी। बहादुर और मानी राजा ने इसके उत्तर में वीरोचित संदेश भेजा, अपनी सेना से झेलम का रास्ता रोक दिया और अपने और देश के मान की रक्षा के लिए लड़ने को तय्यार हो गया।

पोरस के साथ युद्ध—जब सिकन्दर आगे बढ़ा तो उसके अपने मार्ग में एक नई रुकावट जेहलम नदी सामने आई। इसको पार करना सहल न था, क्योंकि नदी में बाढ़ आई हुई थी और दूसरे किनारे पर दुश्मन की फ़ौज तैनात थी। कई हफ़्तों तक सिकन्दर पार करने की कोशिशें करके अपने शत्रु को झूठा डर दिखाता रहा और उसके बाद एक दिन अंधेरी रात को भयङ्कर तूफ़ान में अपने खीमें से कम से कम १६ मील ऊपर एक मोड़ पर से उसने चुपचाप रास्ता तय किया।

अब दोनों सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। भारतीय सेना का बल उसके २०० हाथियों में था, इस के अलावा सैनिक भी सुशिक्षित और सुशासित थे। सिकन्दर की सेना वैसे संख्या में तो थोड़ी थी, पर उसने आधी दुनियां को जीत लिया था और उसके जोश में अपने आगे किसी को कुछ न समझती थी। उसकी उत्कृ-

क्षमता उसके घुड़सवारों और उसके नेता के बुद्धिकौशल में थी।

पोरस वैसे युद्धकला में तो अपने शत्रु से कम निपुण था, पर वीरता में उससे कम न था। युद्ध में उसे एक असुविधा का सामना करना पड़ा। लड़ाई का मैदान इतना फिसलने वाला था कि उसके तीरन्दाज़ अपनी लम्बी कमानों को ज़मीन पर न टेक सकते थे और उसकी सेना के भारी रथों के पहिए कीचड़ में धँस कर उससे बाहर निकलने कठिन हो जाते थे। बहुत घोर युद्ध हुआ और पोरस क़ैद किए जाने से पहले तक लड़ाई करता रहा जिस में उसको नौ घाव लगे। बाणों की वर्षा से चकरा कर जब हाथियों के दल ने अपनी ही ओर की सेना को रौंदना आरम्भ कर दिया तो युद्ध में सिकन्दर की विजय निश्चित दिखाई देने लगी। इसी समय यूनानी घुड़सवार सेना ने चक्कर काट कर भारतीय सेना के पीछे की ओर से धावा किया और इस प्रकार उसे बिल्कुल तितर-बितर कर दिया।

सिकन्दर इस भारतीय नरेश की वीरता से बड़ा प्रभावित हुआ और उसने उससे पूछा कि वह कुछ कहना चाहता है। इसका उत्तर बड़ा संक्षिप्त और मार्मिक था। उसने कहा "मेरे साथ राजाओं जैसा व्यवहार किया जाय।" बस, सिकन्दर का दुश्मन भी उसी के अनुरूप निकला। उसने अपनी बुद्धिमता-पूर्ण उदारता से अपने पराजित शत्रु को शक्तिशाली सखा मित्र बना लिया। पोरस को उसकी गद्दी पर फिर बैठा दिया गया और बाद को उस के राज्य में और अनेक वृद्धियां हुईं।

अन्य अनेक दलों को हराता हुआ सिकन्दर विपाशा नदी के किनारे तक जा पहुँचा। उसके सामने एक विस्तृत अज्ञात देश विद्यमान था। उसने पूर्व के एक शक्तिशाली देश की अफ़वाह सुनी थी और वह उस से ताक़त आज़माना चाहता था। अब तक उसका सामना देश की किसी बड़ी ताक़त से नहीं हुआ था। पर उसकी सेना वर्षों के लगातर युद्ध और परिश्रम से थक गई थी अतः उसने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इस इनकार ने ऐसा उग्र रूप धारण कर लिया कि विद्रोह के लक्षण दिखाई देने लगे। सिकन्दर को वापस लौटना पड़ा। पंजाब की नदियों को पार करने के लिए दो हज़ार जहाजों का बेड़ा तैयार किया गया।

आगे बढ़ना और पीछे हटना।

इसी अवसर पर कुछ स्वतन्त्र जातियों की एक सम्मिलित शक्ति ने उसका सामना किया। पर ये कबीले की सेनाएं अपने समय के सब से बड़े सेनापति सिकन्दर के सामने कुछ भी नहीं थीं। उसकी सेना ने अचानक धावा करके मालवों के देश को नष्ट भ्रष्ट कर दिया। बहुत मुकाबले के बाद शहर के शहर मिट्टी में मिल गए। ऐसे ही एक शहर पर आक्रमण करते समय सिकन्दर की जान जोखिम में पड़ गई थी। अन्य जातियों ने समय देख कर या विवश होकर आधीनता स्वीकार करली और अन्त में सेना सिंध के मुहाने तक पहुँच गई। बेड़ा अरबसागर के रास्ते से रवाना किया गया, और मार्ग में बेड़े को तूफ़ानों और अन्य बहुत-सी विपत्तियों

मालवों की पराजय

Ancient Indian Coins

का बुरी तरह सामना करना पड़ा। जो सेना सिकन्दर के साथ खुश्की के रास्ते सफ़र तय कर रही थी उसे मकरान के रेगिस्तान से जाना पड़ा और उसे भी बहुत कष्ट झेलने पड़े।

सिकन्दर ३३ वर्ष की अवस्था में ३२३ ई० पूर्व में बेबीलोन में मर गया। उसकी मृत्यु उसके शक्तिशाली साम्राज्य के ध्वंस की सूचक थी; कुछ ही वर्षों में भारत से यूनानियों का अधिकार उठ गया।

आक्रमण के प्रभाव—सिकन्दर सारे भारतवर्ष को जीत कर यहां अपना राज्य स्थापित करना चाहता था। पर उसका यह स्वप्न चरितार्थ नहीं हुआ। उसका धावा भारत के सरहद्दी प्रदेशों तक ही रह गया। मध्य देश में वह न पहुँच सका। न इस धावे से भारत की शासन प्रथा या लोगों के रहन-सहन के ढंग पर ही कोई असर पड़ा।

पर इससे इतना लाभ हुआ कि पूर्व और पश्चिम के बीच की दीवार टूट गई। मध्य एशिया में अनेक यूनानी राज्य स्थापित हो गए थे और उनके साथ भारत के विचार-विनिमय की पूरी सम्भावना थी। इस सम्पर्क का क्या फल हुआ, यह आगे चल कर दिखाया जायगा। सिकन्दर के धावे का एक प्रभाव यह पड़ा कि उत्तर भारत में अब तक जिन स्वतन्त्रताप्रिय राज्यों ने अपना सिर उठाए रक्खा था, उनका बल बिल्कुल नष्ट होगया और बाद में उन्हें चन्द्रगुप्त की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

सारांश

प्रारम्भिक हिन्दू राज्य—सातवीं सदी ई० पू० के अन्त में उत्तरीय भारत में कुछ गणसत्ता-राज्य और एक-सत्ता राज्य स्थापित थे। महत्वपूर्ण राज्यों में से कुछ इस प्रकार थे:—

(१) कोसल, (२) मगध-विम्बिसार और अजातशत्रु शक्तिशाली सम्राट् हुए, पाटलिपुत्र इनकी राजधानी थी, बाद में मगध-साम्राज्य नन्द वंश के हाथ आगया, (३) अवन्ती।

सिकन्दर का आक्रमण—मैसीडोनिया के बादशाह, सिकन्दर ने एशिया माइनर, मिश्र, पर्शिया जीतने के बाद ३२७ ई० पू० में भारत पर चढ़ाई की। तक्षशिला के राजा अम्भी ने सिकन्दर का साथ दिया।

पोरस के साथ युद्ध—घमासान की लड़ाई के बाद पोरस हार गया। पर सिकन्दर पोरस की बहादुरी और वीरता से बहुत प्रभावित हुआ और उसको उसका राज्य वापिस कर दिया। सिकन्दर व्यास तक बढ़ आया पर उसके सैनिकों ने आगे बढ़ने से इन्कार कर दिया। लौटने का उसे आदेश देना पड़ा। लौटती बार स्वतन्त्र जातियों को हराया। सिकन्दर ३२३ ई० पू० में बेबीलोन में मर गया।

आक्रमण का प्रभाव—आक्रमण का प्रभाव कुछ भी नहीं पड़ा। यह चढ़ाई सीमा प्रान्त तक सीमित थी। जनता के रहने-सहने के रंग-ढंग और शासन-व्यवस्था में किसी तरह का परिवर्तन नहीं हुआ। पूर्व और पश्चिम को अलग करने वाली दीवार को इस लड़ाई ने तोड़ दिया। स्वतन्त्र जातियां कमजोर हो गईं।

प्रश्न

१. सिकन्दर के धावे से पहले के कुछ शक्तिशाली हिन्दू राज्यों का वर्णन करो।

२. सिकन्दर के भारत पर धावा करने का विवरण लिखो और उसके मुख्य मुख्य परिणामों का भी उल्लेख करो।

३. निम्नलिखित बातों पर संक्षिप्त नोट लिखो:—

लिच्छवि, तक्षशिला, डेरियस, पोरस, मालव।

४. सिकन्दर के धावों की सफलता का कारण लिखो और बताओ कि वह अपना कार्य्य जारी क्यों न रख सका।

५. 'भारतीय इतिहास के पृष्ठ में सिकन्दर रात्रि के अन्धकार में एक दीपक की लौ के समान चमकता है और फिर बुझ जाता है।' इसकी व्याख्या करो।

मौर्य्य-साम्राज्य (३२२-१८५ ई० पू०)

निश्चित इतिहास—चन्द्रगुप्त के आधिपत्य में भारत में मौर्य्य-साम्राज्य की स्थापना से देश में एक ऐसा राजनैतिक संगठन हो गया जो पहले किसी समय नहीं था। उस समय की दशा का ज्ञान प्राप्त करने के अनेक और विश्वसनीय साधन हैं और हम उनकी सहायता से उस समय के जीवन और कार्यकलाप, साम्राज्य-शक्ति के विकास और विश्वव्यापी धार्मिक आंदोलन के फैलने के इतिहास का ठीक २ और रोचक चित्र उतार सकते हैं।

चन्द्रगुप्त का प्रारम्भिक कार्य्य-कलाप—(३२२—२९८ ईसा पूर्व) कहा जाता है कि जब सिकन्दर ने भारत पर धावा किया था तो देश में रहने के अपने थोड़े से समय में उसने विक्रमशील युवा चन्द्रगुप्त मौर्य्य से भेंट की थी जो मगध के राजकुल का अनभिजात वंशज था और जो अपने शक्तिशाली और धनी पिता के क्रोधित होने पर वहां से भाग आया था। ३२३ ई० पू० में मेसीडोनिया के महान् योद्धा की अचानक मृत्यु होने पर इस उद्योगी युवक ने अपने बुद्धिमान् गुरु कौटिल्य की

शिक्षा के अनुसार काम करते हुए सैनिक-विद्रोह का नेतृत्व ग्रहण किया और इस प्रकार बात की बात में पंजाब को यूनानी सेनाओं से रहित कर दिया। इसके बाद उसने अपने उत्तरी भारत के मित्र राजाओं के साथ मगध पर धावा कर दिया, पर उसके सुयोग्य गुरु की कूट नीति की बदौलत नन्द-वंश का पतन सम्भवतः बिना किसी युद्ध के ही हो गया। अब पाटलिपुत्र के राजसिंहासन पर चन्द्रगुप्त बैठा। उसने मगध की शक्तिशालिनी सेना की सहायता से अनेक चमत्कारिक समर-कार्य्य कर दिखाए जिससे कुछ ही दिनों में देश के एक समुद्री तट से लेकर दूसरे तट तक और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक उसी का आधिपत्य हो गया। उसकी इन असाधारण सफलताओं का श्रेय जितना उसकी सैनिक प्रतिभा को है, उसके सुदक्ष गुरु की कूट नीतिज्ञता को उससे कम नहीं है।

कौटिल्य चन्द्रगुप्त का गुरु

सैल्यूकस का धावा—चन्द्रगुप्त और कौटिल्य ने अपनी शक्ति को दृढ़ रूप देने के लिए अनेकानेक साधनों का कैसा सुन्दर उपयोग किया था, यह उस समय प्रकट हो गया जब ३०६ ई० पू० में सैल्यूकस ने जो सिकन्दर के परम निपुण सेनापतियों में से एक था, और जो अब बैबीलोन और सीरिया का बादशाह था, अपने स्वामी के विजय कार्य्य को दुहराने के लिए सिन्धु नद पार किया। उसका भ्रम बुरी तरह दूर किया गया। सिकन्दर के ज़माने में उत्तर-पश्चिम प्रदेश में अनेक छोटी रियासतें थीं जो आए दिन आपस में लड़ती रहती थीं। इस प्रकार उसने उन्हें आसानी से जीत लिया था। पर सैल्यूकस को एक दूसरे

ही ढंग के दुश्मन से पल्ला पड़ा था। उसे एक ऐसी सुसंगठित और शक्तिशालिनी सेना का सामना करना पड़ा जिसका अधिनायक स्वयं चन्द्रगुप्त था। कुशल-पूर्वक वापस जा सकने के लिए उसे काबुल की घाटी तक सिन्धु नद के उस पार के यूनानी इलाके चन्द्रगुप्त की भेंट करने पड़े। पर उसने इस अवसर का अच्छा उपयोग किया और भारत सम्राट् के साथ अपनी कन्या का विवाह करके उसके बदले में चन्द्रगुप्त द्वारा दिए गए पांच सौ हाथियों के साथ वह सीरिया पहुँचा। इस सफलता से चन्द्रगुप्त "भारत की वैज्ञानिक सीमा" का स्वामी बन गया।

चन्द्रगुप्त के साथ संधि

सीमाप्रांत दे दिए

मेगास्थनीज़—सैल्यूकस ने मेगास्थनीज़ नामक एक दूत को मौर्य दरबार में भेजा। मेगास्थनीज़ पाटलीपुत्र में बहुत दिनों तक रहा और उसने तत्कालीन भारत का मनोरंजक वृत्तान्त लिखा है। वह सावधान निरीक्षक था और उसने जो कुछ स्वयं अपनी आंखों देखा वर्णन किया उसके लिए विश्वसनीय है। उसकी रचना अभाग्य से खो गई है। पर उसके अनेक अंश, तत्कालीन अन्य यूनानी इतिहासकारों के भारत वर्णन सहित, हमारे सामने उस समय के देश और जन-साधारण का सजीव विवरण पेश करते हैं।

कौटिल्य-अर्थशास्त्र—कहा जाता है कि चन्द्रगुप्त के प्रधान मन्त्री ने एक अर्थशास्त्र की रचना की थी। इस में राजनैतिक सिद्धान्तों और व्यवहारों का विवेचन किया गया है। सम्राट्-निर्माता कौटिल्य ने ब्राह्मण संस्कृति के आदर्श

के अनुसार अपना जीवन ढाला हुआ था। कहते हैं कि वह शाही महल के पास एक फूस की झोपड़ी में मिताचरण से रहता था। वह शासन प्रबन्ध की कला का परम ज्ञाता और कुटिल तथा तार्किक राजनीतिज्ञ था। वह राजनीति-विज्ञान के रचयिता की हैसीयत से अपने अनेक पूर्ववर्ती राजनीति के पंडितों का हवाला देता है। उसकी इस विलक्षण पुस्तक में आचार-शास्त्र की चर्चा नहीं की गई है बल्कि शासन के व्यवहारिक ढंगों का निरूपण किया गया है और इस प्रकार हम उस पुस्तक की सहायता से प्राचीन भारत के शासन-प्रबन्ध की आश्चर्यजनक जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

भारत का वर्णन—अर्थशास्त्र और यूनानी रचयिताओं के वर्णन के अनुसार—यूनानी भारतवर्ष की उपजाऊ भूमि, लम्बी चौड़ी नदियों, खानों और वनस्पति की बहुतायत और विभिन्नता और पशुओं को देखकर स्वभावतया ही बड़े प्रभावन्वित हुए थे। उन्होंने हाथियों, बन्दरों, सांपों, ऐसी बेतों जिनसे बिना शहद की मक्खियों के शहद बन जाता है (गन्ना), और वनस्पति ऊन (कपास) का विशेष रूप से ज़िक्र किया है।

भारतीय कद में ऊँचे और स्वस्थ

भारतीयों को लम्बे कद, पतले ढांचे और बड़ी उम्र का बताया गया है और कहा गया है कि वे सब प्रकार के रोगों से मुक्त रहते थे क्योंकि वे खाना बहुत सादा खाते थे और शराब से परहेज़ रखते थे।

भारतवासी चरित्र की ऊँची सादगी और बढ़ी-चढ़ी मानसिक शक्तियों से सम्पन्न थे। कहा जाता है कि सदाचरण के क्षेत्र में

"किसी भी भारतवासी को कभी भी झूठ बोलने के अपराध में दण्ड नहीं दिया गया।" "वे मुक़दमेबाज़ी पसन्द नहीं करते। गवाह और अदालती मुहर अनावश्यक हैं। जब कोई आदमी रुपया जमा करता है, तो विश्वास मात्र पर। उनके घर साधारणतया खुले पड़े रहते हैं।" घरेलू जीवन में संयुक्त परिवार की प्रथा यहां प्रचलित थी। सती की प्रथा इच्छा पर निर्भर थी; और यह रिवाज आम तौर से क्षत्रियों में अधिक प्रचलित था। किसी स्त्री को जबर्दस्ती उसकी इच्छा के विपरीत सती होने को वाधित नहीं किया जाता था। भारतवासी तड़क-भड़क की पोशाक पहनना पसन्द करते थे। लिखने का व्यवहार आम था, क्या साहित्य के लिये और क्या जनसाधारण के कार्य्यों के लिये। नर्तक, नर्तकी, गायक, गायिका और नट, नटी की जनसाधारण में खूब आवभगत होती थी।

सदाचार का ऊंचा आदर्श

समाज सात भागों में बांटा हुआ था—(१) दार्शनिक पुरोहित या धर्म्माचार्य्य आदि जो सरल जीवन बिताते थे और धर्म और विद्या के संरक्षक थे; (२) क़िसान या अधिकांश में वे लोग जो शान्ति के साथ अपना धन्धा करते रहते और जिन्हें युद्ध से कोई मतलब नहीं था। ये अपनी आमदनी का एक चौथाई भाग कर में देते थे; (३) पशुओं को पालने वाले और शिकारी, जो जंगलों में रहते थे; (४) व्यापारी और कला-कौशलविद; (५) सिपाही जिनके वेतन बंधे हुए थे; (६) गुप्तचर, भेदिये; और (७) कौन्सिलर, जिनमें से सरकारी पदों के लिये

विभिन्न जातियां

आदमी चुने जाते थे. की श्रेणी को छोड़कर एक वर्ग से दूसरे वर्ग में कोई व्यक्ति अपने आप को नहीं बदल सकता था। इन श्रेणियों में परस्पर विवाह-सम्बन्ध निषिद्ध था।

राजधानी पाटलिपुत्र सोन और गंगा के संगम पर स्थित, अपने वैभव से संसार के बड़े बड़े नगरों का मुकाबला करती थी। वह नौ मील लम्बी और डेढ़ मील से अधिक चौड़ी थी। यह ईंटों की एक लम्बी चौड़ी फ़सील से घिरी हुई थी जिसमें ६४ दरवाज़े और ५७० बुर्जियां थीं। सैनिक दृष्टि से यह नगर एशिया के मज़बूत शहरों में से एक था। इसके चारों ओर ६०० फीट चौड़ी खाई खुदी हुई थी।

पाटलिपुत्र

नगरों की संख्या बहुत थी। क़िलेबन्दी की कला को खूब समझा जाता था। घर प्रायः करके लकड़ी के बनाये जाते थे। कृषि में कृत्रिम सिंचाई से भी काम लिया जाता था। अनेक प्रकार की दस्तकारी का, विशेषकर धातु और पत्थरों की कला का, खूब ज़ोर था।

व्यापार खूब चल रहा था और उसका प्रबन्ध बड़ा सुव्यवस्थित था। अनेक स्थानों पर व्यापारियों के संघ और समाजें विद्यमान थीं। व्यापार खूब उन्नति पर था, और उसके लिए सारे स्थल मार्गों की सरकार देखभाल करती थी। एक राजपथ के द्वारा उत्तर-पश्चिम और तक्षशिला का राजधानी के साथ संबन्ध था। काशी और उज्जैन की एक सड़क के द्वारा मगध राज्य का संबन्ध पश्चिमी भारत के सारे बड़े २ बन्दरगाहों से था। इन बन्दरगाहों का व्यापार मिश्र और वैबीलोन से बहुत प्राचीन काल से जारी था।

व्यापार, व्यवसाय

शासन प्रबन्ध—गवर्नमेंट सुसंगठित और योग्य शासक-

वर्ग से युक्त थी जिसका प्रधान पुरुष स्वयं सम्राट था। उस समय के अधिकांश सम्राटों के समान चन्द्रगुप्त एक-तन्त्री राजा था। उसके नियम कड़े और दण्ड कठोर थे। वह खूब पढ़ा लिखा था और उसका जीवन अत्यन्त सुव्यवस्थित था। वह बहुत शान से रहता था और उसकी शरीर-रक्षा के लिए विदेशी स्त्रियों का एक दल नियत था।

सुचारु निपुण ज़बरदस्त शासन

उसका शासन प्रबन्ध अत्यन्त सुन्दर था। विजय के समान शासन में भी आचार्य कौटिल्य उसका दाहिना हाथ था। सतर्क महामन्त्री कौटिल्य साम्राज्य के प्रति निःस्वार्थ-भक्ति और नेकनियती के लिए बहुत प्रसिद्ध था। पर वह अपने काम-काज में अधिकारियों का विश्वास नहीं करता था। वह कहता है—"जिस प्रकार ओष्ठ पर रक्खे हुए शहद को न चखना कठिन है, उसी प्रकार हाथ में आए हुए सरकारी रुपये में खयानत न करना अधिकारियों के लिए असम्भव है।" इस प्रकार की बुराइयों को रोकने और साम्राज्य के दूरस्थ प्रदेशों से सम्पर्क बनाए रखने के लिए उसने सुशिक्षित गुप्तचरों और भेदियों का एक दल नियत किया था; और यह गुप्तचर और भेदिये साधारणतया योग्य और विश्वासपात्र होते थे।

प्रान्त

तक्षशिला और उज्जैन जैसे दूरस्थ प्रदेशों का शासन साधारणतया राजवंश के चुने हुए राजकुमारों से होता था और छोटे छोटे सूबों का शासन निचली श्रेणी के राजपुरुष करते थे।

राज्य के लगभग तीस भिन्न २ विभागों के कार्य्य जिनका वर्णन कौटिल्य-अर्थशास्त्र में आया है, वर्त्तमान सभ्य सरकार के

गवर्नमेंट के अन्य विभाग

अनेक कार्य्यों से मिलते हैं। उनमें से कुछ सिंचाई, शिक्षा, खान, अकाल-निवारण, चिकित्सा आदि हैं। शासन-व्यवस्था का मौलिक आधार गांव था और पंचायतों को स्वायत्त-शासन प्राप्त था। गांव का शासन पञ्चायत के द्वारा होता था, जो इस काम में स्वतन्त्र होती थी। शहरों के अधिकारियों को पांच पांच सदस्यों के छः बोर्डों में बांट दिया गया था जिनमें से प्रत्येक के सिपुर्द, क्रम से कारखानों की देखरेख, अपरिचितों पर आंख रखना, जन्म और मृत्यु लिखना, बाज़ारों का शासन करना और बनाई गई चीज़ों की पड़ताल और बिक्री पर दस फ़ीसदी कर इकट्ठा करना इत्यादि होता था। ज़िले के अधिकारी सिंचाई, कृषि, जंगलात, नहरों, सड़कों, शिकार आदि की देखरेख करते थे।

सेना—भारतवासियों ने युद्धकला में काफ़ी उन्नति कर ली थी; और यूनानियों ने स्वीकार किया था कि एशिया भर में भारतवासी उन्हें सब से अच्छे लड़ाके मिले।

युद्ध-परिषद् द्वारा नियन्त्रण

चन्द्रगुप्त ४,००,००० मनुष्यों की सेना का वेतन नियतरूप से, नियत समय पर देता था और इस सेना का प्रबन्ध युद्ध-विभाग द्वारा किया जाता था जिसके पांच पांच सदस्यों के छः बोर्डों के सिपुर्द, नौ-सेना, जल-यात्रा और रसद का प्रबन्ध, पैदल सेना, घुड़सवार, रथ और हाथी किये गये थे। क़िलों का नियम-पूर्वक निर्माण और प्रबन्ध होता था। एक भारतीय तीरन्दाज़ के पास अपनी लम्बाई की कमान और छः फीट लम्बे तीर होते थे। वह कमान के एक सिरे को ज़मीन पर टेकता और उसकी डोरी अपने कानों तक

खींच कर तीर छोड़ता था जो ढाल और कवच को साधारण कागज़ की तरह भेद डालते थे।

निष्कर्ष—चन्द्रगुप्त शांति और युद्ध दोनों में शक्तिशाली था। भारत में एक बड़े साम्राज्य की स्थापना करने वालों में वह सब से पहला ऐतिहासिक व्यक्ति हुआ है। अपने गुरु कौटिल्य की, जो चाणक्य के नाम से भी प्रसिद्ध था, सहायता से उसने ऐसी सुन्दर राजनैतिक व्यवस्था कर दी थी कि बाद को उसी की बदौलत उसके प्रसिद्ध पोते को अपने विश्व-व्यापी प्रचार कार्य्य में सफलता हो सकी। वह २९८ ई० पू० में मर गया या उसने सिंहासन छोड़ दिया।

बिन्दुसार—(२९८–२७४ ई० पूर्व) चन्द्रगुप्त का पुत्र बिन्दुसार अपने पिता के विशाल साम्राज्य पर २५ वर्ष तक शासन करता रहा। दक्षिण भारत के राज्यों को शायद इसी शासक ने मौर्य साम्राज्य में मिलाया।

अशोक का गद्दी पर बैठना (२७४ ई० पू०)—बिन्दुसार की २७३ ई० पू० में मृत्यु होने पर अशोक सिंहसन पर बैठा। यह सम्भव है, जैसा कि कुछ दन्तकथायें प्रचलित हैं, कि इसके बड़े भाई ने इसके सिंहासन के अधिकार को नहीं माना और लड़ाइ की। संसार के इतिहास में अशोक का नाम सब से अधिक पुरुषों में से है। प्राचीन भारत में इस मौर्य्य सम्राट से अधिक अन्य कोई व्यक्ति परिचित और प्रभावशाली नहीं है। एक इतिहासकार ने लिखा है कि इतिहास और कुछ नहीं, अपराधों, मूर्खताओं, और मानवजाति की विपत्तियों का खाता है। इस दृष्टि-कोण से देखने पर अशोक में कोई ऐतिहासिक

मनोरंजकता दिखाई न पड़ेगी। उसका कार्य्य-कलाप तो धर्म और नैतिक आदर्शों में केन्द्रीभूत था। अशोक का नाम एक ऐसे व्यक्ति की हैसियत से हमेशा याद रक्खा जायगा जो बौद्ध धर्म का महान् संरक्षक था, जिसने एक साधारण से धार्मिक सम्प्रदाय को मानव-समाज के महान् धर्म्मों में से एक धर्म्म बना दिया और जो परोपकार का आदर्श था।

कलिंग के साथ युद्ध—(२६१ ई० पू०) गद्दी पर बैठने से पहले अशोक उज्जैन और तक्षशिला के सूबेदार की हैसियत से शासन-प्रबन्ध में निपुणता प्राप्त कर चुका था। राज्याभिषेक उसके गद्दी पर बैठने के चार साल बाद २६६ ई० पू० में हुआ। उसके शासनकाल के पहले कुछ सालों में कोई उल्लेखनीय घटना नहीं हुई। उसका पैतृक साम्राज्य हिन्दुकुश से मैसूर तक फैला हुआ था। पर कलिंग का शक्तिशाली प्राचीन राज्य जो समुद्र के पूर्वी तट पर गोदावरी और महानदी के बीच में स्थापित था, अब भी सिर उठाए खड़ा था। उसमें से होकर दक्षिण जाने का एक प्रधान मार्ग था। अशोक ने उसे साम्राज्य में मिलाने का निश्चय कर लिया। बड़ी भयावह लड़ाई हुई जिसमें पानी की तरह खून बहाया गया। अशोक की विशाल सेना के साथ युद्ध करने के लिए कलिंग की सारी स्वतन्त्रता-प्रिय प्रजा उठ खड़ी हुई थी। एक लाख आदमी मारे गए और इससे भी अधिक बन्दी किए गए। राज्य को साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया गया।

विजय का अंत ऐसे आश्चर्य्यजनक ढंग से कभी नहीं हुआ। विजय के कारण जो पीड़ाएँ और हत्याएँ हुईं उनसे अशोक का हृदय प्रायश्चित के गहरे और सच्चे भावों से भर गया। बस, यहीं से उसके नवीन जीवन का

काया-पलट

आरम्भ होता है। उसे विश्वास होगया कि युद्ध नैतिक-दृष्टि से निरा पाप-कर्म है। विजय के अवसर पर अपने वीरतापूर्ण कार्य्यों का बखान लम्बे चौड़े शब्दों में करने के बदले उसने जनता के सामने अपने अपराध को स्वीकार किया। युद्ध-स्वप्न बिलकुल अदृश्य होगया। इसके बाद से उसकी विजय 'धर्म-विजय' थी।

बौद्ध मत स्वीकार किया

उसने एक गृहस्थ चेले की तरह बौद्ध मत स्वीकार किया। अपने बाकी जीवनमें वह अपने साम्राज्य के अतुल साधनों को धर्म और कर्तव्य के—जिस रूप में उसने उन्हें समझ पाया था—प्रचार और प्रसार करने में लगाता रहा। इस प्रकार कलिङ्ग का युद्ध अशोक के जीवन-धारा को बदलने वाला साबित हुआ।

अशोक के शिला लेख—बौद्ध मत स्वीकार करने के बाद उसने अपने आदेश जारी किए जो संख्या में लगभग तीस थे। उनमें धर्म और कर्तव्य की विवेचना थी, उन साधनों का ज़िक्र किया गया था जो उसने अपनी प्रजा और अन्य लोगों में धर्म फैलाने के लिए अपनाये थे और उन सिद्धान्तों का वर्णन किया गया था जिनके अनुसार वह प्रजा पर शासन करना और अपने अधिकारियों से कराना चाहता था। ये आदेश मानव-जाति की अमूल्य सम्पत्ति हैं।

इन आदेशों को उसके विस्तृत साम्राज्य के प्रधान व्यापार मार्गों पर देश के भिन्न भिन्न भागों में चट्टानों और खम्भों पर

प्रचार के प्रबल साधन

खुदवाया गया। वे आजकल सारे देश में—उत्तर में पेशावर और नैपाल से दक्षिण में मैसूर तक और पूरब में पुरी के निकट धौलि से लेकर

पश्चिम में गिरनार तक—पाए जाते हैं। वे स्थानीय भाषाओं में सरल रूप से लिखे गए थे और इसलिए सबकी समझ में आसानी से आ जाते थे। इस प्रकार वे प्रचार कार्य्य के बड़े उत्तम साधन थे। ये "शिला उपदेश" सम्राट अशोक के आत्म-चरित्र का काम देते हैं और उसके शासन काल के इतिहास की विश्वसनीय सामग्री हैं।

धर्म—जैसा पहिले कहा जा चुका है, अशोक के शिला-लेखों का मुख्य उद्देश्य धर्म की व्याख्या करना था। धर्म अशोक के अनुसार नैतिक सद्‌गुणों का विधान-मात्र था जो सब लोगों की एक जैसी सम्पत्ति थी। उसमें अहिंसा—या पशु जीवन की रक्षा—पर विशेष ज़ोर दिया गया था। धर्म पर केवल विश्वास रखना ही काफी न था, उस पर अमल करना ज़रूरी था। उसके आवश्यक अङ्ग इस प्रकार थे—(१) गृहस्थ जीवन की पवित्रता, जिसमें—माता-पिता की आज्ञा का पालन, गुरु और वृद्धजनों का सन्मान, मित्रों, परिचितों और साथियों के साथ शिष्टता का बर्ताव करना, आदि पर जोर दिया गया है, (२) अहिंसा, पशु-जीवन की रक्षा, (३) सहिष्णुता, (इस बात पर ज़ोर देने के लिए कि सहिष्णुता धर्म का आवश्यक अङ्ग है, एक और आदेश खास तौर से जारी किया गया था। स्वयं अशोक अपने इस आदेश का सब से बड़ा अनुकारी था। यद्यपि वह कट्टर बौद्ध था, उसके अनुग्रह और दान केवल बौद्धों तक ही परिमित न थे), (४) अन्य सद्‌गुण, जैसे दया, दान, संयम, सत्य, विचार और कर्म की पवित्रता, आत्म-निरीक्षण आदि।

धर्म का फैलाव—अशोक ने धर्म के प्रति अपनी अगाध भक्ति के साथ अपने दादा के द्वारा अत्यन्त योग्यतापूर्वक सुसङ्गठित शासन-व्यवस्था को लोगों को उच्च नैतिक आदर्श में शिक्षित करने में लगाया। इस उद्देश्य के लिए उसने जो कुछ किया, वह इस प्रकार संक्षेप में कहा जा सकता है—

१. आक्रमणकारी युद्ध बन्द कर दिए गए। सम्राट् के भोजनालय में आरम्भ में पशु हिंसा परिमित की गई, पर बाद को बिलकुल बन्द कर दी गई। सम्राट् के शिकारी दौरों की जगह धार्मिक यात्राएँ और बौद्ध धर्म के पवित्र स्थानों की यात्राएँ आरम्भ कर दी गईं। पशुओं की रक्षा और ब्राह्मणों द्वारा पशु-बलि के निषेध के लिए कई ख़ास क़ानून बनाए गए।

२. लोकहित के अनेक कार्यों के विस्तृत प्रोग्राम को हाथ में लिया गया। सड़कों पर पेड़ लगाए गए। थोड़ी थोड़ी दूर पर कुएँ खुदवाए गए। विश्राम-शालाएँ बनवाई गईं और औषधालय—आदमियों और पशुओं, दोनों के लिए—सिर्फ़ उनके ही साम्राज्य में नहीं, किन्तु आस-पास के देशों में भी, खुलवाए गए।

३. उसने जनता के नैतिक और आध्यात्मिक लाभ के लिए एक नया महकमा खोल दिया जिसमें धर्म-महामात्र नियुक्त किए गए।

४. अपने शासन-काल के २१वें वर्ष के आरम्भ में उसने बौद्ध भिक्षुओं का एक विशाल सम्मेलन किया; जो पाटलिपुत्र की दूसरी बौद्ध परिषद् के नाम से प्रसिद्ध है—जिसमें नौ महीने तक बौद्ध सिद्धान्तों के विवाद-ग्रस्त स्थलों पर विचार होता रहा।

दूसरी बौद्ध परिषद्

The Empire of Asoka
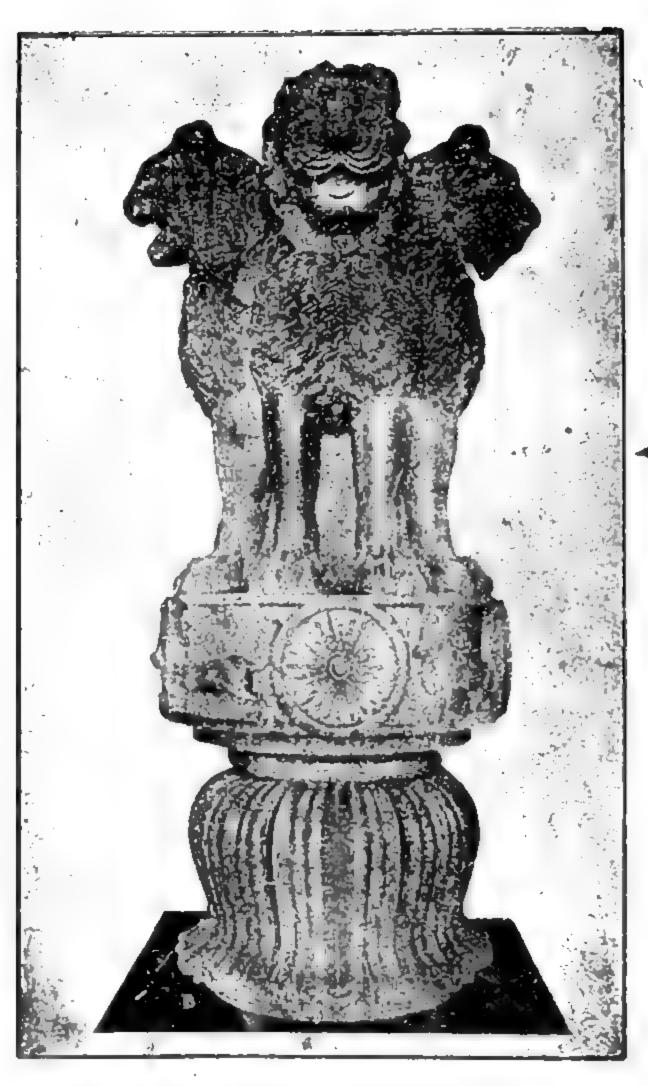
Mauryan Art (Asokan pillar at Sarnath)

५. उसने जो सब से अधिक महत्व-पूर्ण कार्य किया वह विदेशों में धर्म-प्रचार करने वाली संस्था की स्थापना करना था।

बौद्ध मिशन

उसके संरक्षण में यह संघ संसार भर में बड़ा प्रभावशाली धर्म-प्रचारक संघ होगया। बौद्ध मिशन न केवल अपने राज्य, उसके आस पास के प्रान्तों जातियों, लंका, पेगू और हिमालय में ही काम करते थे, बल्कि उन्होंने मिश्र, सीरिया और मैसिडोनिया आदि दूरवर्ती यूनानी राज्यों में भी प्रचार-कार्य किए। सीलोन में उन्हें बहुत सफलता हुई। वहाँ संघ का मुखिया अशोक का छोटा भाई महेन्द्र था; जिसके साथ कुछ दिनों बाद उसकी बहिन भी काम करने लगी—दोनों ने बौद्ध मत स्वीकार कर लिया था। तब से लंका बौद्ध धर्म का एक प्रधान अड्डा हो गया है।

मौर्य्य कला—अशोक वास्तु-कला का बड़ा प्रेमी था। उसके शासन-काल से पहले ही भारतीय कला बहुत कुछ उन्नत

अशोक वास्तु कला-प्रेमी

हो चुकी थी पर उसका वास्तविक इतिहास इस समय से ही आरम्भ होता है। इससे पहले घर बनाने में लकड़ी का व्यवहार किया जाता था, और इसी कारण वे सारे भवन नष्ट हो गए। अशोक के शासन-काल में लकड़ी की जगह पत्थर से काम लिया गया। उसने अपनी राजधानी की शोभा एक विशाल पत्थर के महल से बढ़ाई, जिसकी पच्चीकारी को देख कर कुछ शताब्दियों बाद चीनी यात्री विस्मय से दंग रह जाते थे। उत्तर भारत के दो नगरों—काश्मीर के श्रीनगर और नैपाल के देवापटन—के विषय में कहा जाता है कि वे अशोक ने ही बनाए थे। उसके विषय में प्रसिद्ध है कि

उसने अनेक स्तूप बनाए थे।

उसके स्तम्भ वास्तु-विद्या और प्रतिमा-शिल्प की उत्कृष्टता के अद्‌भुत नमूने हैं। बढ़िया बढ़िया पत्थरों के दीर्घ और भारी २ टुकड़ों को स्तम्भों का रूप दिया गया और उन्हें दूरस्थ स्थानों में ले जाया गया। वे तोल में करीब ५० टन और ऊँचाई में पचास फीट तक थे। ऐसे स्तम्भों को एक जगह से दूसरी जगह लेजाने में कितनी कठिनाई होती होगी, इसका अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि कई शताब्दियों के बाद जब सुल्तान फ़िरोजशाह ने अम्बाला के पास के एक स्तम्भ को उठवा कर दिल्ली भेजना चाहा तो इस काम के लिये ८,४०० आदमी मुकर्रर किये गए जिनके दो दो सौ आदमियों के दल उस गाड़ी के, जिस पर यह रक्खा गया था, ४२ पहियों में प्रत्येक पर लगाए गये थे। और इस पर भी खूबी यह कि ऊँचाई और भार में इतने विशालकाय होते हुए भी इन स्तम्भों में वास्तु-कला का सुन्दर दिग्दर्शन होता है।

उसके स्तम्भ

मौर्य्य साम्राज्य का पतन—४० वर्ष के यशस्वी शासन के बाद २३६ ईसा पूर्व में अशोक मर गया। उसे स्वभावतया ही संसार के शान्ति-स्थापकों में अग्र स्थान दिया जाता है। उसका नाम बौद्ध-जगत् में उक्त धर्म के महान् संरक्षक की हैसियत से प्रसिद्ध है। उसके जीवन के सम्बन्ध में अनेक दन्त-कथाएं प्रचलित हैं।

उसकी मृत्यु के बाद ही से उसके साम्राज्य का पतन और फिर नाश आरम्भ होगया। अर्द्ध शताब्दी के भीतर ही भीतर मौर्य्य सिंहासन पर छः सात सम्राट् बैठे, पर वे सब निर्बल और

अयोग्य थे। इनमें से अन्तिम सम्राट् की १८५ ई० पू० में उसके शक्तिशाली सेनापति पुष्यमित्र ने हत्या कर डाली। इस प्रकार यशस्वी मौर्य्य राज-वंश का अन्त हुआ।

सारांश

चन्द्रगुप्त मौर्य—(३२२–२९८ ई० पू०) मगध के राज-घराने का अनभिजात वंशज, राजा नन्द की सेवा में था उसके नाराज होने पर मगध उसने छोड़ दिया। सिकन्दर के लौटने पर पंजाब का शासक होगया। अपने आचार्य और प्रधान मन्त्री कौटिल्य की सहायता से, मगध पर एक बड़ी सेना के साथ आक्रमण किया और मगध जीत लिया, उत्तरीय भारत के अन्य राज्यों को जीत लिया और प्रथम भारतीय साम्राज्य की स्थापना की। सिकन्दर के सैल्यकस नामक एक सेनापति ने ३०६ ई० पू० में आक्रमण किया। उसको हरा दिया गया। सन्धि में उसे अपनी कन्या और काबुल की घाटी तक का देश देना पड़ा, इसके बदले में उसे ५०० हाथी मिले। उसने चन्द्रगुप्त के दरबार में मैगास्थनीज़ नामक एक दूत भेजा, इसने भारत के बारे में एक महत्वपूर्ण किताब लिखी।

मैगास्थनीज़ और कौटिल्य द्वारा वर्णित भारत—(१) वनस्पति और जीव—ग्रीक यात्री भारत की उपजाऊ सुन्दर जमीन, विविध प्रकार के खनिज पदार्थ, वनस्पति और जीव जन्तुओं से बहुत प्रभावित हुआ।

जनता—ऊँचा कद, गठित और स्वस्थ शरीर। नैतिक जीवन का ऊँचा आदर्श उनमें मौजूद था। मैगास्थनीज ने उन्हें सात

भागों में बांटा है—दार्शनिक, खेतिहर, शिकारी, व्यापारी, शिल्पी योद्धा, गुप्तचर, सलाहकार अथवा कौन्सिलर।

पाटलिपुत्र—विशाल और सुन्दर शहर, नौ मील लम्बा और डेढ़ मील चौड़ा, चारों ओर एक दीवार से घिरा हुआ जिसमें ६४ दरवाजे ५०० बुर्जियां थीं।

व्यापार—व्यापार खूब चला हुआ था, खूब व्यवस्थित था, राजपथ बने हुए थे। व्यापारियों और व्यवसाइयों के संघ और सभायें बनी हुई थीं।

शासन प्रबन्ध—राजा स्वेच्छाचारी था। कानून कठोर था, राजा उन दिनों नरम हो ही नहीं सकता था। कौटिल्य दायां हाथ था। गुप्तचरों का एक सुरक्षित और गठित दल रहता था।

प्रान्तीय शासन—दूर के प्रान्तों पर राजकुमारों द्वारा और समीपवर्ती प्रान्तों पर निचले अफसरों द्वारा शासन होता था।

नगर का शासन प्रबन्ध—हरएक बड़े नगर का प्रबन्ध ३० मेम्बरों की एक समिति के अधीन था, समिति के पांच पांच मेम्बरों के ६ बोर्ड होते थे जिनका कार्य, कारखानों का निरीक्षण, विदेशियों की निगरानी, जन्म और मृत्यु का लेखा रखना, बाजार का नियन्त्रण, तैयार माल का निरीक्षण और बिक्री पर १० प्रति सैकड़ा कर इकट्ठा करना था।

सैनिक प्रबन्ध—नियमित रूप से वेतन पाने वाली एक स्थिर सेना रहती थी, जिसका नियन्त्रण युद्ध-विभाग करता था। इसके अधीन पांच पांच मेम्बरों की ६ उपसभायें प्रबन्ध करने के लिए थीं, जो समुद्री सेना, रसद, पदाति सेना, रथ सेना, अश्वारोही और हस्ति सेना का प्रबन्ध करना था।

अशोक—चन्द्रगुप्त बिन्दुसार के बाद उसका पुत्र अशोक गद्दी पर बैठा और २७४ ई० पू० से २३६ ई० पू० तक राज्य किया। संसार के इतिहास में सबसे बड़े बादशाहों में से यह एक है।

कलिङ्ग युद्ध—पहिला और अन्तिम युद्ध इसने कलिङ्ग विजय के लिए किया। कलिङ्ग देश महानदी और गोदावरी के बीच के देश को कहते थे। इस खूनी युद्ध का उसके दिल पर बड़ा असर हुआ इसके बाद से इनका जीवन बदल गया और यह बौद्ध होगया।

अशोक का धर्म—अशोक के अनुसार धर्म नैतिक जीवन के नियमों का विधान था, जिनके अनुसार जीवन बिताना चाहिए। ये केवल विश्वास करने के लिए नहीं थे। इन नियमों में —माता पिता की आज्ञा मानना, गुरुजनों के सम्मान, मित्रों, परिचितों के प्रति उचित सम्बन्ध, जीवों के प्रति दया, सहिष्णुता, सच्चाई, दान और अन्य गुण सम्मिलित थे।

धर्म प्रचार के साधन—(१) लड़ाई बन्द कर दी, राजकीय भोजनशाला के लिए हत्या बन्द की, शिकार बन्द कर दिया।

(२) सार्वजनिक कार्य—सड़क, कूप, विश्राम-गृह और मनुष्यों और पशुओं के लिए दवाखाने खोले।

(३) जनता के नैतिक जीवन के सुधार के लिए अफसर नियुक्त किए।

(४) द्वितीय बौद्ध-महापरिषद जो नौ मास तक बैठी रही।

(५) शिला लेख भी प्रचार के उत्तम साधन थे।

(६) पर सबसे अधिक महात्त्वपूर्ण कार्य विदेश में प्रचार करने के लिए प्रचारक भिक्षु-संघ की स्थापना है। इसके द्वारा सम्पूर्ण

भारत में ही नहीं प्रत्युत नैपाल, सीलोन, बर्मा, इजिप्ट सीरिया और मैसीडोनिया आदि में प्रचार किया गया। अशोक के भाई महेन्द्र के अधीन लङ्का में गया मिशन बहुत सफल हुआ।

मौर्य-साम्राज्य का अन्त—अशोक के बाद गद्दी पर दुर्बल राजा बैठे। अन्त को १८५ ई० पू० में सेनापति पुष्यमित्र ने मार दिया।

प्रश्न

१. मौर्य चन्द्रगुप्त के उदय का इतिहास लिखो और यह भी बताओ कि चन्द्रगुप्त के शासन का इतिहास जानने के लिए हमारे पास क्या साधन हैं?

२. मौर्य चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध के बारे में शासन-पद्धति का उल्लेख करते हुए एक नोट लिखो। साथ ही भारत का एक मान-चित्र दो जिसमें मौर्य चन्द्रगुप्त के राज्य की सीमा दिखाओ।

३. मेगास्थनीज़ चन्द्रगुप्त के शासन प्रबन्ध और देश के रीति-रिवाजों के बारे में क्या कहता है?

४. अशोक के शिला लेखों से, अशोक के चरित्र, धर्म, धर्म-प्रचार के लिए प्रयत्न—इन विषयों में क्या जानते हो? धर्म से अशोक का वास्तविक अभिप्राय क्या है?

५. अशोक के शासन पर एक संक्षिप्त नोट लिखो।

६. चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन-प्रणाली पर एक नोट लिखो। उसके विषय में मेगास्थनीज़ और अन्य यूनानी लेखकों से क्या सामग्री मिलती है?

७. अशोक के शासन-काल का, उसके बौद्ध धर्म के संरक्षण का विशेष निर्देश करते हुए, संक्षिप्त विवरण लिखो। उसके फैलाने के लिए उसने क्या क्या उपाय किए थे?

८. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो:—(१) अशोक का धर्म, (२) अशोक के आदेश, (३) पाटलिपुत्र, (४) कौटिल्य, (५) कलिङ्ग।

मौर्य वंश के पतन से लेकर गुप्त वंश के उत्थान तक

शुंगों की अधीनता में हिन्दूधर्म की प्रतिक्रिया—
शुंग राजवंश के प्रवर्त्तक पुष्यमित्र के गद्दी पर बैठते ही बौद्ध धर्म के विरुद्ध एक शक्तिशाली हिन्दू प्रतिक्रिया (reaction) का आरम्भ हुआ। उसका वंश ११२ वर्ष (१८५—७३ ई० पू०) तक राज्य करता रहा। पुष्यमित्र भी एक साम्राज्य का स्वामी था, पर उस साम्राज्य का विस्तार अशोक के समय से बहुत कम होगया था। उसकी शक्ति मालवा और बरार तक फैली हुई थी। वह एक यूनानी राजा (सम्भवतः मेनांडर) के आक्रमण को व्यर्थ करने में सफल हुआ। उसने कालिङ्ग के शक्तिशाली राजा के आक्रमण को भी निष्फल किया। उसके पुत्र ने विदर्भ (बरार) को विजय कर लिया। इस प्रकार अब उसे अश्वमेध नामी प्रसिद्ध यज्ञ करना न्याय-युक्त दीख पड़ा। प्रसिद्ध वैयाकरणी पतंजलि

प्रवर्त्तक पुष्यमित्र

अश्वमेध, पतंजलि

इन्हीं के समय में हुए शुंगों के बाद कण्व नामी ब्राह्मण-वंश का प्रभुत्व हुआ पर उसके चार राजाओं ने केवल ४५ वर्ष (७२–२८ ई० पू०) तक राज्य किया। इस वंश के अन्तिम राजा को एक आंध्र राजा ने मार डाला।

खारवेल—अशोक ने कलिंग राज्य को एक विनाशकारी युद्ध के बाद जीत लिया था। उसकी मृत्यु के बाद ही कलिंग फिर स्वतन्त्र हो गया और खारवेल नामक एक योग्य शासक के, जो पुष्यमित्र का समकालीन था, समय में उसकी बहुत उन्नति हुई। हमें इस विलक्षण राजा के कार्य्य का विवरण एक मनोरंजक शिला-लेख में मिलता है। इस राजा ने उत्तर के मगधराज्य और दक्षिण के आंध्रराज्य पर अनेक बार धावे किए।

आंध्र वंश—मौर्य्य साम्राज्य के पतन के साथ ही साथ दक्षिण में आंध्रराज्य ने भी बड़ी शीघ्रता के साथ शक्ति प्राप्त कर ली। इस शक्तिशाली राजवंश के तीस राजाओं ने सुदीर्घ काल तक ४५० साल शासन किया। मेगास्थनीज़ के समय में भी इस राज्य को, जो गोदावरी और कृष्णा के डेल्टे में अत्यन्त संकुचित रूप से स्थित था, शक्तिशाली समझा जाता था। पर इस से पहले के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं है। इस समय समूचे दक्षिण पर उनका अधिकार हो गया था। पूर्व की ओर, ऐसा विदित होता था कि, उन्होंने मगध-राज्य पर भी ईस्वी सन् के प्रारम्भिक काल में अधिकार कर लिया था। पश्चिम की ओर उन्होंने उन विदेशी शक राजाओं के आक्रमण-प्रवाह को रोक दिया था जिन्होंने मालवा और सुराष्ट्र में अपना राज्य स्थापित कर लिया था। ई० सन् के आरम्भ में इन्होंने कण्डवों को हरा दिया

और मगध के भी स्वामी हो गए। आंध्रवंश के राज्य का अन्त कोई २२५ ई० में हो गया। ये प्राकृत-साहित्य के संरक्षक थे।

आंध्रों का पश्चिमी समुद्र तट के भृगुकच्छ और अन्य महत्व-पूर्ण बन्दरगाहों पर अधिकार था। इनके द्वारा रोमन साम्राज्य के साथ खूब तेज़ी से व्यापार होता था और बहुत सा धन भारत में आता था। पूर्वी तट के बन्दरगाहों का मलाया प्रायःद्वीप और दक्षिणी चीन के साथ फलता फूलता व्यापार था। उस समय के व्यापारिक सम्बन्धों के कारण ही भारत सुमात्रा, जावा, स्याम और इण्डो-चीन में उपनिवेश क़ायम कर सका था।

भारतीय-यूनानी---२५० ईसा पूर्व के लगभग, जिस समय अशोक अपनी शक्ति की पराकाष्ठा पर था, बैक्ट्रिया और पार्थिया ने सीरिया के साम्राज्य के विरुद्ध विद्रोह किया और अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम कर ली। मौर्य साम्राज्य के पतन के समय भारत की राजनैतिक स्थिति विदेशी आक्रमणों के अनुकूल थी। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी के प्रारम्भ में बैक्ट्रिया के एक राजा ने अफ़गानिस्तान पर अपना अधिकार कर लिया। पञ्जाब और पश्चिमी भारत के अधिकांश भाग को अपने राज्य में मिला लिया। इस आक्रमण से ऐसे दो यूनानी राजवंशों की स्थापना हुई है जो भारत की सीमा पर लगभग एक शताब्दी तक शासन करते रहे। उनके इतिहास की सामग्री केवल वे सिक्के हैं जिन पर यूनानी और भारतीय लिपियां लिखी मिलती हैं और जो भिन्न २ रूपों में काफ़ी संख्या में पाए जाते हैं। इस प्रकार के ४५ शासकों के नाम विदित हैं।

मीनांडर---पर इन सारे शासकों में केवल मीनांडर ही कुछ महत्ता प्राप्त कर सका। यह काबुल और पञ्जाब पर

ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में शासन करता था। उसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। प्रतीत होता है, कि इसने गंगा की घाटी पर चढ़ाई की और साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र भी खतरे में पड़ गई। इसका ज़िक्र अनेक भारतीय लेखकों ने किया है। वह बौद्ध धर्म का कट्टर अनुयायी था। उसके सिक्के उत्तर-पश्चिम भारत में बहुतायत से पाये जाते हैं।

शक—यूनानी राजाओं का स्थान अब पार्थिया के शक राजाओं ने लिया। इन्होंने मथुरा और तक्षशिला को राजधानी बना कर पश्चिमोत्तर भारत के बहुत से भाग पर राज्य किया। शिला-लेखों से मालूम होता है, कि इनमें से बहुत से राजा और सरदार बौद्ध थे। शकों की एक शाखा ने उज्जैन जीत लिया, जो बाद में विक्रमादित्य ने जीत लिया। यही राजा प्रसिद्ध विक्रम संवत का संस्थापक है और इसी के नाम से संवत अब तक चल रहा है। उज्जैन पर शकों का प्रभुत्व ईसा की दूसरी शताब्दी के आरम्भ में फिर स्थापित हो गया और लगभग तीन शताब्दियों तक रहा। उनमें से एक शाखा ने सुराष्ट्र या काठियावाड़ पर शासन किया। पश्चिमी भारत के शक राजा दक्षिण में अपने आंध्र पड़ोसियों से बहुधा लड़ते रहते थे। वे शीघ्र ही हिन्दू धर्म में मिल गए। सब से प्राचीन संस्कृत शिला-लेख उन्हीं के शासन-काल के पाए जाते हैं।

कुशान—पश्चिमी चीन से खदेड़े हुए शक्तिशाली यूची जाति के अनेकानेक दल दक्षिण-पश्चिम की ओर लगातार आ आकर बस रहे थे। मूलतः ये लोग बहुत हिस्सों में बटे हुए थे। ईसा काल के प्रारम्भ में वे कुशान जाति के सरदार की अधीनता में एक हो गए।

कुशान यूचियों की एक शाखा थी। कुशान राजा ने काबुल की घाटी अपने राज्य में मिला ली, गांधार प्रदेश पर अपना अधिकार कर लिया और भारत की सीमा पर से यूनानियों और शकों के राज्य का नामोनिशान तक मिटा दिया। उसके पुत्र और उत्तराधिकारी ने शायद गंगा के की वादी पर बनारस तक अधिकार कर लिया था और मालवा के शक शासकों को भी अपनी अधीनता मानने पर बाधित कर दिया था। पर उसे चीनियों के हाथों भारी हार खानी पड़ी और उनकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

कनिष्क—कुशान शक्ति का पूर्ण विकास कनिष्क के ज़माने में हुआ। इसके शासन का समय अभी तक निश्चित नहीं है और इसके राज्याधिकार पाने का समय १२० ई० माना जाता है। इसने अपने विशाल साम्राज्य पर जिसकी राजधानी पुरुषपुर या पेशावर थी, चालीस वर्ष तक राज्य किया। उसके जीवन का अधिक भाग मध्य एशिया की असभ्य जंगली जातियों के साथ सफलतापूर्ण युद्ध करने में ही बीता।

अपने शासन-काल के आरम्भ में इसने काश्मीर की रमणीय घाटी अपने राज्य में मिला ली। पश्चिम में उसने पार्थियन राज्यों पर अधिकार किया और इस प्रकार अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार किया। उसकी उल्लेखनीय विजय चीनियों के ऊपर थी जिनके हाथों उसका पूर्वाधिकारी इतनी बुरी तरह हारा था। उसने खोतान, यारकन्द और काशघर के राजाओं को परास्त किया। कहा जाता है कि उसके लम्बे और दुष्कर युद्धों से तंग आकर उसके कर्मचारियों ने उसकी हत्या कर डाली।

उसकी विजएँ

उसके सिक्के बताते हैं कि वह हिन्दू, बौद्ध, यूनानी और फ़ारसी देवी-देवताओं के एक विचित्र सम्मिलन को आदर की दृष्टि से देखता था। पर बौद्ध उसे अपने धर्म का उदार और कर्मशील संरक्षक समझते हैं और दूसरा अशोक मानते हैं। उसने विवादपूर्ण धार्मिक सिद्धान्तों को निश्चित करने के लिए काश्मीर में तीसरी बौद्ध परिषद् बुलवाई। इस परिषद् के निश्चयों को, जो बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों पर टिप्पणियों के रूप में थे, ताम्र-पात्रों पर खुदवा कर श्रीनगर के पास एक स्तूप में रख दिया गया। कनिष्क का बौद्ध धर्म महायान मत का था जो अशोक के हीनयान बौद्ध धर्म से भिन्न था।

उसका धर्म

नागार्जुन, अश्वघोष आदि अनेक प्रसिद्ध बौद्ध लेखक उसके आश्रय में रहते थे। चरक, जिसे आयुर्वेद का सर्व-श्रेष्ठ लेखक कहा जाता है, उसका राजवैद्य था। कहा जाता है कि गांधार देश की वास्तु-कला का विकास भी इसके समय से प्रारम्भ हुआ। यह भी अशोक की तरह इमारतों को बनाने का बड़ा शौकीन था और इसने अपनी राजधानी की शोभा अनेक सुन्दर बौद्ध भवनों से बढ़ाई थी। वर्तमान तक्षशिला के एक भाग में इसके बनाए हुए नगर के खण्डहर मिलते हैं। काश्मीर में इसके नाम का एक नगर था। इसके शासन-काल में मथुरा में अनेक सुन्दर भवन बनाए गए।

साहित्य और कला का संरक्षक

बौद्ध धर्म का फैलाव—कुशान साम्राज्य की बढ़ती के साथ ही साथ बौद्ध धर्म भी शक्ति प्राप्त करता जाता था। गांधार प्रदेश—जहां तक्षशिला का महान् विश्वविद्यालय था—बौद्ध विहारों से भरा हुआ था। इसी युग में बौद्ध धर्म का उत्तर की

ओर फैलाव आरम्भ हुआ और इससे भारत और चीन में सम्बन्ध स्थापित हो गया। खोतान और चीन को आने जाने का रास्ता खुला था। जिसका प्रभाव बहुत अधिक हुआ और जो एक हज़ार वर्ष तक बना रहा। चीनी विद्वान् भारत के विश्वविद्यालयों में शिक्षा पाने आते थे और भारत से अनेक पण्डितों को चीन में शिक्षा देने के निमित्त बुलाया गया।

बौद्ध धर्म की कायापलट—गांधार की तक्षण-कला और कनिष्क के सिक्कों से यह साफ मालूम होता है, कि कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म बहुत परिवर्तित हो गया था। धर्म का जैसे जैसे फैलाव हुआ, उस से उसमें परिवर्तन होना आवश्यक हो गया था। कनिष्क के संरक्षण में बौद्ध धर्म का केन्द्र पाटलिपुत्र से गांधार हो गया और इससे दूर के अनुयायियों पर संघ का प्रभाव कम हो गया। इसके अलावा नवीन बौद्ध धर्म ने विभिन्न लोगों की रुचि और आवश्यकताओं को अपनाया था। इस कारण इसने पुराने बौद्ध धर्म के मूलतत्वों के विरोधी विश्वासों और रिवाजों को अपने में मिला लिया। बौद्ध धर्म का यह नवीन पन्थ महायान नाम से प्रसिद्ध हुआ और पुराना पन्थ हीनयान नाम से मशहूर हुआ। इन दोनों में मुख्य भेद इस प्रकार हैं—

१. दक्षिणी (हीनयान) बौद्ध धर्म बुद्ध को अपना गुरु समझता था, उधर उत्तरीय (महायान) बौद्ध धर्म बुद्ध को देवता मानता था, जो कि अनुयायियों के हृदय में सदा विराजमान रहता है।

२. दक्षिणी बौद्धों ने कभी भी बुद्ध की मूर्ति नहीं बनाई थी, पर उत्तरीय बौद्धों ने बुद्ध के जीवन की हरएक घटना और पूर्व जन्म की कथाओं की अनन्त मूर्तियां बना डालीं।

३. दक्षिणी बौद्ध धर्म केवल जीवनोपयोगी व्यवहारिक नियमों का संग्रहमात्र था, पर उत्तरीय बौद्ध धर्म ने योग और भक्ति को हिन्दू-विचारों, जो उन दिनों बहुत शक्ति हासिल कर रहे थे, और जनता के मन को अपील कर रहे थे, अपना लिया।

४. उत्तरीय बौद्ध धर्म की प्रवृत्ति हिन्दू धर्म से मिलने की ओर थी। इसके अनुयायी संस्कृत का उपयोग करते थे जब कि पहिले के बौद्ध पाली का उपयोग करते थे।

गान्धार प्रतिमा-शिल्प

प्रारम्भिक बौद्धों ने अपने पूजनीय संस्थापक की मूर्ति बनाने का साहस कभी नहीं किया था। इस समय में मूर्ति बनाने की चाल के कारण बुद्ध का सन्देश दूर दूर देशों में पहुंच गया।

कायापलट के कारण

इस कायापलट के कारण अनेक थे। ईसा काल के पहले भक्ति मार्ग के उत्थान और योग-दर्शन के विकास ने बौद्ध धर्म पर अपना प्रभाव दिखाया और इस से बौद्ध धर्म में भावुकता आ मिली। प्रारम्भिक बौद्ध धर्म वास्तव में व्यवहारिक नैतिक आचरणों का धर्म था जिसमें सारे प्राणियों के प्रति अहिंसा भाव सम्मिलित था। पर इस प्रकार का धर्म लोगों को अधिक दिनों तक आकर्षित न कर सकता था जब तक उसमें अधिक साकारता को स्थान न दिया जाता।

विदेशियों का शीघ्रता पूर्वक सम्मिलन—इस ज़माने की एक उल्लेखनीय बात विदेशी जातियों का भारतीय सामाजिक व्यवस्थाओं और धर्मों का आश्चर्यजनक ढंग से अपनाना है। ईसा पूर्व की दूसरी शताब्दी में हम एक यूनानी को वासुदेव की उपासना में एक स्तम्भ खड़ा करते पाते हैं। कुशान केवल बौद्ध

मतावलम्बी ही न बने, बल्कि उन्होंने कनिष्क के बाद ही अपने नाम भी भारतीय ढंग पर ही रखने आरम्भ कर दिये। मालवा के शक शासकों ने संस्कृत विद्या को अपनाया, हिन्दू नाम धारण किए और वे हिन्दू समाज के अंग ही बन गए।

भारत पर यूनानी प्रभाव

भारत पर यूनान के प्रभाव की समस्या पर बहुत दिनों से विद्वानों में वाद-विवाद चलता आ रहा है और उनमें उसके परिमाण के विषय में बड़ा भारी भेद है। हम यह देख ही आए हैं कि भारत पर सिकन्दर के हमले का कोई प्रत्यक्ष प्रभाव नहीं पड़ा। भारत और पश्चिमी दुनिया के आपस के व्यापार के सम्बन्ध का जो कई सदियों तक रहा भारत या पश्चिम की सभ्यता पर प्रायः कोई प्रभाव नहीं पड़ा। हां, यूनानियों का भारतीयों के साथ ठीक ठीक सम्बन्ध उस समय से जारी हुआ जब उत्तर-पश्चिम प्रान्तों में यूनानी राज्य कायम हो गए। इस गहरे सम्बन्ध का जो कई सदियों तक रहा, असर इस तरह संक्षेप से बयान किया जा सकता है—

१. धर्म और संस्कृति—यूनानियों की संख्या थोड़ी थी। उन पर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा और उन्होंने हिन्दू नाम रखने शुरू कर दिए। निःसन्देह भारतीय-यूनानी राजा और लोग हिन्दू सभ्यता को ग्रहण करने में प्रवृत्त थे न कि भारतीय राजा और उनकी प्रजा यूनानी सभ्यता को अङ्गीकार करने में।

२. कला— कला के सम्बन्ध में हमें भारत पर यूनान के प्रभाव के प्रधान कारणों का पता लगाने के लिए गांधार की मूर्ति-निर्माण-कला को देखना चाहिए। इस शैली में जिस अक्सर

यूनानी-बौद्ध शैली कहते हैं, बौद्ध विषयों को यूनानी ढंग से बहुत कुछ सफलता के साथ मूर्ति के रूप में ढालने का काम किया गया है। कनिष्क और उसके वंशजों की अधीनता में इस शैली में अनेक मूर्तियां बनी जिनमें बौद्ध आख्यानों को सजीव और रोचक ढंग पर व्यक्त किया गया था। इधर कुछ दिनों से गांधार मूर्तियों की निन्दा करने का रिवाज-सा चल गया है पर यह कुछ ठीक बात नहीं है। यह माना कि उनमें गुप्त काल की ललित और प्रभावशालिनी मूर्तियों की तरह सुन्दरता या ओजस्विता नहीं है, पर उनमें से कई एक सुन्दरता और मनोरंजकता से खाली नहीं है। ये गौतम के जीवन और जातक आख्यानों पर सजीव टिप्पणी का काम देती हैं। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि भारतीय-कला पर यूनान की वास्तु-कला का प्रभाव पड़ा। ४०० ई० तक गांधार शिल्प बिल्कुल नष्ट हुआ जान पड़ता है।

३. सिक्के—भारतीयों ने मुद्रा-निर्माण में पाश्चात्यों से बहुत कुछ सीखा। भारतीय कलाविदों ने मुद्रा बनाने की ओर कभी ध्यान नहीं दिया और इस कारण अच्छे सिक्के शायद ही कभी तैयार हो सके हों। भारतीय-कलाविद विदेशी सिक्कों की नकल करके ही सन्तुष्ट हो जाते थे। दक्षिण में तो बहुत से रोमन सिक्के ही प्रचलित थे।

४. साहित्य—यह कहा जाता है, कि यदि भारतीय दर्शन पर नहीं, तो भारतीय नाट्यकला पर अवश्य ही यूनानियों का बहुत कुछ प्रभाव पड़ा है। पर दोनों में मेल की बातें इतनी कम और साधारण हैं, और भेद इतने मौलिक और महत्वपूर्ण हैं कि

इस बात को अब विद्वान नहीं मानते। कनिष्क के राज-चिकित्सक चरक के विषय में कहा गया है कि वह यूनानियों की औषधियों से परिचित था, पर अभी तक इसे प्रमाणित नहीं किया गया है।

हां, ज्योतिष-शास्त्र में भारत यूनान का ऋणी अवश्य है, और उसके इस ऋण को साफ़ तौर से स्वीकार कर भी लिया गया है। गर्ग संहिता में लिखा है—"वैसे तो यवन असभ्य हैं; पर ज्योतिष-शास्त्र का जन्म उन्हीं में हुआ, इसलिए उनकी देवताओं की सी पूजा करनी चाहिए।" इस विषय पर भारतीय ग्रन्थों में ग्रहों और अन्य पारिभाषिक शब्दों के यूनानी नामों का खूब व्यवहार किया गया है। इनमें एक 'रोमक सिद्धान्त' है।

ज्योतिष में यूनान का भारत पर ऋण

अन्तमें यह कहा जा सकता है कि भारत पर यूनान का प्रभाव स्थायी कभी नहीं रहा।

सारांश

१८५ ई० पू० से ३२० ई० तक

मगध के राजवंश—(१) शुंग—पुष्यमित्र ने इस राजवंश की स्थापना की, हिन्दू धर्म का संरक्षक था—अश्वमेध यज्ञ किया, (२) कण्व और (३) आंध्र—दक्षिण भारत का एक शक्तिशाली राजवंश—३० राजाओं ने ४०० साल तक राज्य किया। मगध पर कुछ काल तक इनका अधिकार रहा।

पश्चिमोत्तर के राजवंश—भारतीय यूनानी—भारत के सीमा-प्रान्त पर लगभग एक शताब्दी तक इन लोगों ने राज्य किया। शक—भारतीय-ग्रीक की जगह शकों ने ली, इन्होंने अपनी ताकत दक्षिण में

उज्जैन और काठियावाड़ तक फैलायी। कुशान—शकों को कुशानों ने धकेल दिया और कुशानों की शक्ति कनिष्क के समय पराकाष्ठा तक पहुँच गई।

कनिष्क—१२० ई० में गद्दी पर बैठा, राजधानी पुरुषपुर थी।

(१) महान विजेता—मध्य एशिया में कई युद्ध किए, चीन और काश्मीर को विजय किया। इसका साम्राज्य पामीर से लेकर मालवा और यारकन्द से मथुरा तक फैला हुआ था।

(२) बौद्ध—अशोक के समान यह कट्टर बौद्ध था, तृतीय बौद्ध संघ बुलाया, महायान धर्म में विश्वास करता था और पुराने बौद्ध धर्म से महायान को अलग किया। इनका धर्म प्रचार चीन तक ही मुख्यता रहा।

(३) साहित्य और कला का संरक्षक—नागार्जुन और अश्वघोष प्रसिद्ध लेखक हुए, चरक राज-चिकित्सक था। कनिष्क भवन-निर्माण का प्रेमी था। कनिष्क का समय उत्तर में बौद्ध धर्म के विस्तार के लिए प्रसिद्ध है। विस्तार के प्रयत्न में धर्म में बहुत से परिवर्तन आए। यह परिवर्तित धर्म महायान बौद्ध धर्म कहलाया।

ग्रीस का भारत पर प्रभाव —पश्चिमोत्तर प्रान्त में ग्रीक राज्यों के स्थापित होने पर असली सम्बन्ध स्थापित हुआ। धर्म में भारतीयों पर ग्रीस का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा, पर यूनानी लोग हिन्दू रंग में रंग गए। कला में भारतीओं ने ग्रीक रूप और ढंग को गान्धार-स्कूल में अख्तियार किया, पर उसको अपने रंग में रंग दिया। साहित्य पर व्यवहारतः कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। भारतीयों ने मुद्रा और ज्योतिष में ग्रीक लोगों से बहुत कुछ सीखा। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रीक लोगों का भारत पर बहुत प्रभाव नहीं पड़ा और जो पड़ा वह स्थायी नहीं था।

प्रश्न

१. कनिष्क कौन था? कनिष्क की विजय, धर्म, कला और साहित्य संरक्षण के बारे में क्या जानते हो? बौद्ध धर्म की उसने क्या सेवा की? अशोक और कनिष्क का बौद्ध धर्म के संरक्षक की हैसियत से मिलान करो।

२. यूनानियों का और भारतीयों का परस्पर एक दूसरे पर क्या प्रभाव पड़ा? संक्षेप से लिखो।

३. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो:—

महायान, आंध्र, मीनांदर, शक, भक्तिमार्ग, गांधार, मूर्तिकला।

४. भारतीय इतिहास के निम्नलिखित कालों के सम्बन्ध में क्या क्या प्रधान ऐतिहासिक सामग्री है?—

(१) इण्डो आर्य्य प्रभुत्व। (२) चन्द्रगुप्त मौर्य का समय। (३) अशोक-काल। (४) यूनानी आक्रमण।

५. ईसा की पहिली और दूसरी शताब्दी में बौद्ध धर्म में क्या क्या उलट-फेर हुए? बौद्ध धर्म के दो शाखाओं में बटने का क्या कारण हुआ और उनमें मुख्य भेद क्या है?

भारत का स्वर्ण युग

गुप्त वंश का उत्थान—भारतवर्ष की तीसरी शताब्दी की राजनैतिक स्थिति के विषय में इतिहासकार अंधकार में हैं। चौथी शताब्दी के प्रारम्भ में चन्द्रगुप्त ने, जो शायद मगध में एक साधारण राजा था, प्राचीन और शक्तिशाली लिच्छवि वंश की राजकुमारी के साथ विवाह करके अपनी शक्ति बढ़ाई और पाटलिपुत्र पर अधिकार कर लिया। इसके बाद धीरे धीरे उसने अपना राज्य प्रयाग तक बढ़ाया और अपने नाम का संवत् चलाकर अपने आप को भारत का सम्राट् घोषित किया। वह गुप्तराजवंश का प्रवर्त्तक था। इस राजवंश के उदार शासन-काल में भारत को एक नवीन गौरव का युग आ गया।

चन्द्रगुप्त और उसका लिच्छवि वंश में विवाह

समुद्रगुप्त (३२६--३७५ ई०)—उसका पुत्र और उत्तराधिकारी इस राजवंश में सब से अधिक यशस्वी सम्राट् हुआ है। उसने चालीस व पचास साल तक राज्य किया। उसको प्राचीन भारत का एक अत्यन्त शक्तिशाली और सुयोग्य सम्राट् समझा
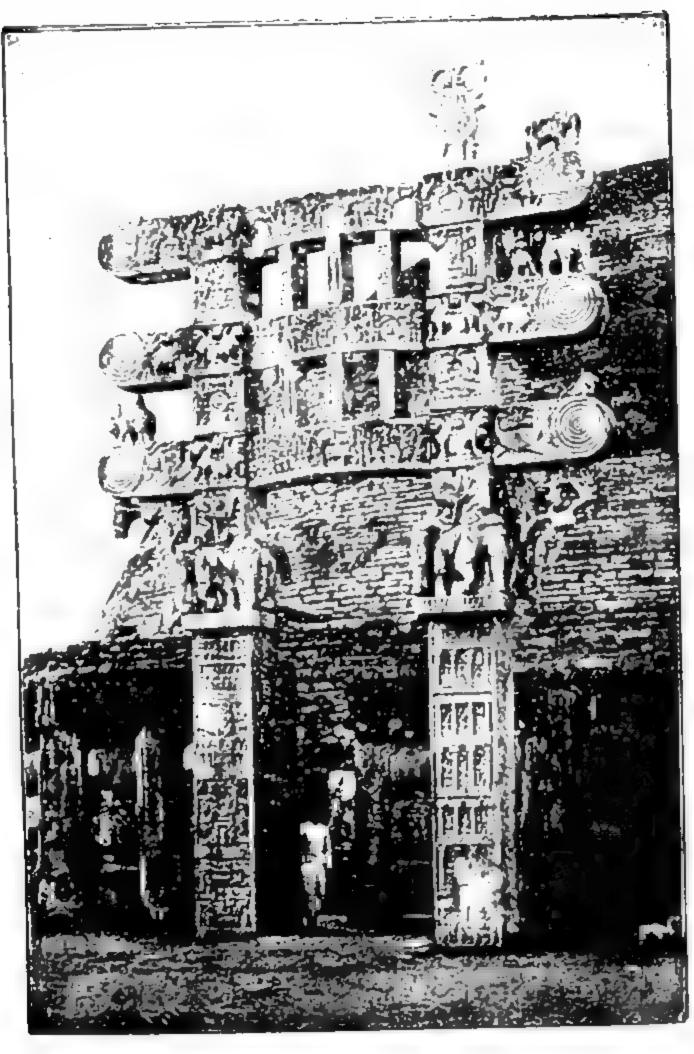
Post-Mauryan Art (Gateway at Sanchi)

The Empire of Samudragupta

जाता है। अशोक शांति और अहिंसा का समर्थक था, उसके विपरीत समुद्रगुप्त युद्ध और विक्रम-शीलता को अच्छा समझता था। एक विजय कार्य्य से घृणा करता था, दूसरा उसे बड़े अनुराग की निगाह से देखता था। उसके भीतर आरम्भ से ही चक्रवर्ती बनने की अभिलाषा काम कर रही थी। अपने शासन-काल के आरम्भ में ही उसने विजय कार्य्य का ऐसा विशद प्रोग्राम अमल में लाना आरम्भ किया कि उसने अपने लिए 'भारत का नैपोलियन' उपाधि प्राप्त की है। इसके विजयों को पांच श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।

विजय

उसने आर्य्यवर्त व उत्तरीय भारत के अनेकानेक राज्यों को बेरहमी के साथ तहस नहस कर डाला और उन्हें अपने राज्य में मिला लिया। उसने मध्य भारत की क्रूर जंगली जातियां को अपने वश में किया। वह एक महती सेना लेकर दक्षिण की ओर गया और वहां के सब राजाओं को जीत कर लौटा। उसकी शक्ति और प्रतिभा से चौंधिया कर कामरूप, नैपाल मालवा, यौधेय आदि अनेक सीमान्त राज्यों ने स्वयं आत्म-समर्पण कर दिया। उसका प्रभाव यहीं तक परिमित न था। उत्तर पश्चिम भारत की सीमा से परे के विदेशी राजा और लंका का राजा भी अपने शक्तिशाली पड़ौसी के साथ मित्रता करना हितकर समझते थे। इस प्रकार औक्सस से लंका तक उसके मित्र राज्य हो गए, और अब उसने अश्वमेध यज्ञ को, जो पुष्यमित्र के समय से व्यवहार में नहीं आया था, करना उचित समझा।

अश्व मेध

यदि इन विजयों से उसका युद्धकला में निपुण होना ज्ञात

होता है तो उसने शांति की कला में भी अपने आप को प्रसिद्ध करके दिखाया। उसके अनेक प्रकार के सिक्कों से उसके आचरण के भिन्न भिन्न रूप दिखाई पड़ते हैं। कुछ सिक्कों में वह आराम के साथ बैठा हुआ वीणा बजाता दिखाई देता है और कुछ में वह बल और सजीवता की मूर्ति बना जीते जागते शेर को पैर से कुचलता दिखाई पड़ता है। वह काव्य और साहित्य में खूब प्रवीण था।

उस की निपुणताएं

(चन्द्रगुप्त द्वितीय—विक्रमादित्य—(३७५-४१३ ई०)
३७५ ई० में उसकी गद्दी पर उसका पुत्र चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की उपाधि धारण कर गद्दी पर बैठा। उसने मालवा, काठियावाड़ और गुजरात को विदेशी शक राजवंशों से जीता जो बहुत सदियों से पश्चिमी तट के समृद्ध व्यापार को अपने नियन्त्रण में किए हुए थे। वह एक शक्तिशाली शासक था और उसके सुदीर्घ शासन-काल में भारत में शांति और सुख ही चारों ओर दिखाई पड़ता था।

फ़ाहियान (३९९-४१३)—उसके शासन-काल में भारत में सब से पहला चीनी यात्री फ़ाहियान आया। उसका उद्देश बौद्ध धर्म के पवित्र जन्मस्थान भारत का दर्शन और बौद्ध-धर्म-ग्रन्थों की प्रामाणिक सामग्री प्राप्त करना था। इस साहसी यात्री को रास्ते में अनेक कठिनाइयां भुगतनी पड़ीं और उसे तक्षशिला पहुंचते पहुंचते छः वर्ष लग गए। उसने गांधार और मगध के पवित्र बौद्ध तीर्थ स्थानों में भ्रमण किया, पाटलिपुत्र में तीन साल तक अध्ययन किया, और फिर ताम्रलिप्ति नामक पूर्वी भारत के प्रसिद्ध समुद्र तट पर जाकर दो वर्ष तक अध्ययन किया। इसके बाद वह लंका

और जावा होता हुआ अपने देश को वापस चला गया।

फ़ाहियान भारत-वर्णन—यह पवित्र यात्री अपने धार्मिक कार्य्यों में इतना डूबा हुआ था कि उसने देश की राजनैतिक स्थिति की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया। पर फिर भी उसके वर्णनों से लोगों की दशा पर काफ़ी प्रकाश पड़ता है। पाटलिपुत्र की, जो शाही राजधानी था, अब पहले जैसी शान नहीं रही थी। शासन-प्रबन्ध नम्र था, कर हल्के थे, दण्ड-विधान मौर्य्य काल के दण्ड-विधान से बहुत हल्का था, प्राणदण्ड अज्ञात था, यात्रा निष्कंटक थी और मार्ग सुरक्षित थे।

पाटलिपुत्र

कानून तथा कर

मगध और कौशल बौद्ध संस्कृति के केन्द्र थे। सारे देश में सुन्दर से विहार बने हुए थे। भिक्षु अपनी विद्वत्ता और कठोर अनुशासन के लिए प्रसिद्ध थे। बड़े सदाचारी होते थे। विद्या आम-तौर से वंशपरम्परा से मौखिक तथा केवल स्मृति की सहायता से दी जाती थी। धार्मिक सहिष्णुता परले सिरे की थी। विभिन्न मतावलम्बी एक साथ शांति से रहते थे। जातिबन्धन का बड़ी कड़ाई से पालन होता था। अहिंसा के सिद्धान्तों ने लोगों के हृदयों पर अपना सिक्का जमा लिया था।

बौद्ध संस्कृति के गढ़, मगध और कौशल

स्वर्ण युग—गुप्त शासन-काल भारत का स्वर्ण युग कहा जाता है। इस काल में हिन्दूधर्म का पुनर्जीवन हुआ था। हिन्दू सभ्यता समुद्र लांघ कर दूसरे देशों में पहुँची, उपनिवेश कायम किए और दूसरों को शिक्षा दे और स्वयं शिक्षा ग्रहण की। उस समय भारतवर्ष एशिया की सब से बड़ी शक्ति था।

हिन्दुत्व का पुनर्जीवन—हम यह देख ही आए हैं कि अशोक की मृत्यु के थोड़े दिनों बाद ही से बौद्ध धर्म के विरुद्ध हिन्दू धर्म में प्रतिक्रिया उत्पन्न होने लगी थी। हिन्दू धर्म भक्ति-मार्ग से विदेशी लोग आकर्षित होने लगे थे। उज्जैन के शक शासक और खासकर रुद्रदमन संस्कृत का संरक्षक था।

राजभाषा संस्कृति

हिन्दूधर्म की विकास-शालिनी शक्तियों ने गुप्त वंश के शासन-काल में बहुत उन्नति की और बौद्ध धर्म पर धीरे धीरे विजय प्राप्त करना शुरू कर दिया। संस्कृत राजभाषा बन गई और उसे बौद्ध भी अपनाने लगे।

महान् विश्वविद्यालय—भारत के विचारों का प्रभाव उसकी सीमा को लांघ कर बहुत दूर चला गया था। उस काल की विद्या और संस्कृति बड़े बड़े विद्यापीठों में केन्द्रीभूत थी जहां की शिक्षा साम्प्रदायिक पक्ष-पात से बिलकुल स्वतन्त्र होती थी। तक्षशिला, अजन्ता और नालन्दा के विश्वविद्यालय उस विद्या के अवश्य केन्द्रस्थल रहे होंगे जिसके द्वारा गुप्त शासन का स्वर्ण युग सम्भव हो सका। यहां विदेशी विद्वान् आ आकर विद्याध्यन करते थे और यहां से बौद्ध भिक्षु एशिया के भिन्न भिन्न देशों में जाकार धर्म प्रचार करते थे।

नालन्दा और अजन्ता के विश्वविद्यालय

हमारे पास उत्तर-कालीन नालन्दा विश्वविद्यालय का विस्तृत विवरण है। उसे एक के बाद दूसरे राजा खूब दिल खोल कर धन की सहायता देते रहे, जिस से वह न केवल उच्च श्रेणी के दस हज़ार विद्यार्थियों को शिक्षा ही मुफ्त देता था किन्तु भोजन और रहने का स्थान भी प्रदान करता था।

नालन्दा

उसके पन्द्रह सौ शिक्षक अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध थे। उसके बड़े बड़े भवनों को भीतर से बड़ी सुन्दर ललित प्रतिमाओं से सजाया गया था। शिक्षा देने और विश्वविद्यालय के संचालन में प्रशंसनीय नियंत्रण का पालन किया जाता था। वह विषयों की व्यापकता की दृष्टि से वास्तविक विश्वविद्यालय था जिसमें संस्कृत, अध्यात्म, दर्शन, कानून, विज्ञान, औषध और कलाओं की शिक्षा दी जाती थी।

संस्कृत का पुनर्जन्म—हिन्दू धर्म के पुनरुज्जीवन के साथ साथ, हिन्दुओं की धार्मिक भाषा, संस्कृत का व्यवहार बढ़ने लगा। न्यायालयों और कचहरियों में यह भाषा प्रचलित हुई; बौद्धों ने भी इसे स्वीकार कर लिया। इस काल के सिक्के और लेख सब संस्कृत में ही लिखे गए।

साहित्य और विज्ञान—यह युग भारत के शेक्सपियर कालिदास का युग था जिसमें नाट्यकला अपने पूरे विकास पर पहुँच गई थी। उसकी सारी रचनाएँ भारत के साहित्य में अग्रस्थान रखती हैं। उसकी सर्वोत्कृष्ट रचना शकुन्तला दीर्घ काल से पूर्व और पश्चिम के हज़ारों पाठकों को आनन्दित करती आई है। उस समय के शिला लेखों की भाषा से साफ़ ज़ाहिर होता है कि संस्कृत अपनी पूर्ण उन्नति की अवस्था में थी। सम्भव है उस समय और भी बहुत से प्रसिद्ध नाटक रचे गए हों। अधिकांश पुराणों को अन्तिम रूप दिया गया। वसुबन्धु नामक प्रसिद्ध बौद्ध लेखक भी आरम्भिक गुप्त शासकों के राज्यकाल में ही हुआ था।

कालिदास

शकुन्तला

विज्ञान के अध्ययन में बड़ी उन्नति की गई थी। आर्य-भट्ट,

वराहमिहिर और ब्रह्मगुप्त "अपने समय के दुनियां में सब से बड़े ज्योतिषाचार्य और गणितज्ञ थे।" बाद को भारतीय विज्ञान का अरब के द्वारा योरुप में प्रसार हुआ। अरबों ने भारत के बीजगणित, औषध, शिल्प, चिकित्सा, विज्ञान और ज्योतिष का खूब उपयोग किया, यद्यपि वे स्वयं भी किन्हीं बातों में आगे बढ़ गए।

आर्यभट्ट और वराहमिहिर

कला-कौशल—उस समय वास्तुकला, मूर्त्तिकला और चित्रकला ने अपनी पूरी उन्नति कर ली थी, यद्यपि अभाग्य से अब गुप्त-काल के अधिकांश भवन नष्ट हो गए हैं। दिल्ली की कुतुब मीनार के पास का लोह-स्तम्भ और नालन्दा की बुद्ध की विशाल ताम्रमूर्त्ति धातुओं के शिल्प-कौशल का एक चमत्कार है। उसकी बनावट को देखकर अब से कुछ दिनों पहले तक उस ढले हुए लोहे से बना समझा जाता था। अजन्ता की गुफ़ा के कुछ सर्वोत्कृष्ट चित्र इसी काल के हैं। इन चित्रों से 'भारत की उस समय की चित्रकला की उन्नति पराकाष्ठा तक पहुँची हुई प्रकट होती है।'

व्यापार-व्यवसाय—पश्चिमी समुद्रतट का रोम साम्राज्य के साथ बहुत ज़ोर का व्यवसाय चल रहा था। उस समय रोम साम्राज्य खूब सम्पन्न था। पश्चिमी भारत में प्राप्त हुए हज़ारों रोमन सिक्कों से हमारे इस कथन की और भी पुष्टि होती है। भारत पश्चिम के व्यापार से धनी हो रहा था। पूर्व की ओर गुप्तों के व्यापारिक उद्योग ने भारतीय सभ्यता को समुद्र पार पहुँचा दिया था। समुद्रयात्रा के अनेक खतरे होते हुए भी भारत के व्यापारी और औपनिवेशिक अध-

रोम साम्राज्य के साथ व्यवसाय

विदेशों में भारतीय संस्कृति

कारी सुमात्रा, जावा और वहां से कम्बोडिया को जाते रहते थे।

सफ़ेद हूण—(४१३–४५५ ई०) चन्द्रगुप्त द्वितीय का उत्तराधिकारी कुमारगुप्त एक योग्य शासक था। उसके शासन-काल के अन्त में देश की शांति भंग हुई। गुप्त-वंश की सारी उत्कृष्ट सैनिक तैयारियों के होते हुए भी वे भारत की वैज्ञानिक और प्राकृतिक उत्तर-पश्चिम सीमा पर अधिकार न कर सके थे। जिस समय सफ़ेद हूणों के आरम्भिक दलों ने भारत में आना आरम्भ किया, उस समय पंजाब का द्वार उसके लिए खुला हुआ था। भारत में आकर इन असभ्य हूणों ने असंख्य अत्याचार किए। इस देश में इतनी पाशविकता और क्रूरता पहले कभी नहीं देखी गई थी। उस समय तो ऐसा मालूम होने लगा कि इन जङ्गली अश्वारोही हूणों के द्वारा भारत की सभ्यता का अन्त हो जायगा। कुमारगुप्त बहुत वृद्ध था। साम्राज्य के ऊपर भारी विपत्ति आने वाली थी। ऐसे कड़े अवसर पर राज्य के उत्तराधिकारी, गुप्त-वंश के सबसे वीर शासक, स्कन्द-गुप्त ने साहस के साथ शत्रुओं का सामना किया और अपने साम्राज्य की मानव-जाति के इस अभिशाप से रक्षा की; पर आगे चलकर गुप्त-साम्राज्य इन्हीं हूणों के दलों द्वारा नष्ट कर दिया गया।

स्कन्दगुप्त के गद्दी पर बैठने के बाद हूणों ने पहले से भी भयङ्कर आक्रमण किया, पर उसे निष्फल कर दिया गया। पंजाब में आए दिन नए नए दल धावे करने लगे और पांचवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों में गुप्तों को उन्हें मालवा प्रान्त देना पड़ा। गुप्तवंश की फ़ौजी ताकत के टूटने से भारत में एक बार फिर अनेक छोटी छोटी तथा एक दूसरी से स्वाधीन सत्ता रखनेवाली रियासतें बन गईं।

गुप्तों से हूणों ने मालवा ले लिया

गुप्तसाम्राज्य का छिन्न भिन्न होना

मिहिरकुल—हूणों का सरदार मिहिरकुल बड़ा ज़ालिम था। उसके अत्याचारी राज्य का ५२६ ई० में अन्त हुआ जब मालवा नरेश यशोधर्मन् और गुप्त सम्राट् बालादित्य ने उसे हराया और कैद किया। इस हार ने हूणों की शक्ति को भारत में नष्ट कर दिया। मिहिरकुल को छोड़ दिया गया और वह काश्मीर चला गया। वहां भी कई वर्ष तक अत्याचार के शासन के बाद ५४० ई० में मर गया। इसकी मृत्यु के बाद से हूणों का पतन आरम्भ हो गया और भारतीय नरेश उन्हें अपने काबू करने में सफल हुए।

सुराष्ट्र में मैत्रकों ने एक नई राज-सत्ता क़ायम कर ली और वल्लभी को अपनी राजधानी बनाया। इस राज्य ने काफ़ी महत्त्व और सम्पत्ति प्राप्त की, और कुछ दिनों में यह बौद्ध शिक्षा का प्रसिद्ध केन्द्र बन गया। यह राजवंश आठवीं शताब्दी तक क़ायम रहा। आठवीं शताब्दी में इसे शायद अरबों ने नष्ट कर दिया। इसी समय दक्षिण में एक चालुक्यवंश ने वातापी में एक और नया राज्य क़ायम किया और वह राज्य शीघ्रता से दक्षिण में एक प्रधान शक्ति हो गया।

हर्ष (६०६-६४७ ई०)—सम्राट् हर्ष के समय उत्तर भारत का अधिक भाग एक बार फिर राजनैतिक एकता के सूत्र में बँध गया। इस साम्राट् में समुद्रगुप्त और अशोक, दोनों के गुण मौजूद थे। इसके कार्य्य-कलाप से समुद्रगुप्त की सैनिक-विजय और अशोक की साधुता की याद आती है। अपने शासन के अन्तिम वर्षों में वह शांति-पूर्ण कार्यों में लग गया। इसके पिता, प्रभाकर वर्द्धन, थानेश्वर के राजा, ने अपनी ताक़त का सिक्का न सिर्फ गुर्जरों और मालवों पर ही जमाया था, बल्कि हूण राजाओं को भी उसका

Gupta Art (Ajanta Cave)

The Empire of Harsha

परिचय दिया था। उसके अचानक मरने के बाद ही ६०६ ई० में उसके दामाद को मालवा के राजा ने और उसके सब से बड़े पुत्र को बंगाल के राजा ने धोखे से मार डाला। उसका छोटा लड़का हर्ष अभी नवयुवक ही था। पर बदला लेने की आग ने उसे युद्ध के लिए विवश कर दिया। मालवा पर अधिकार कर लिया गया। वह कई वर्ष तक लगातार युद्ध करता रहा, और अन्त में उसका साम्राज्य उत्तर-भारत में दक्षिण पंजाब से लेकर पूर्व में बंगाल और पश्चिम में वल्लभी तक फैल गया। आसाम के राजा को भी उसकी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। पर इन लगातार विजयों को दक्षिण के शक्तिशाली चालुक्यराज पुलकेशिन् द्वितीय ने अपनी ओर बढ़ने से रोक रक्खा, और अन्त में हर्ष के साम्राज्य की दक्षिणी सीमा नर्वदा नदी निश्चित की गई।

महान् विजेता

दक्षिण में हर्ष की हार

विद्या-प्रेम—हर्ष ने एक बड़ी स्थायी सेना रक्खी और उसे ३० वर्ष तक तलवार म्यान से बाहर निकालने की ज़रूरत न पड़ी। अब उसे सभ्यता और विद्या के प्रचार में लगने का अवकाश मिला मिला। वह साहित्य का बड़ा संरक्षक था; उसका दरबार बड़े २ दार्शनिकों, कवियों, नाट्य-कारों और कलाविदों से भरा रहता था, जिन में बाण का नाम सब से अधिक उल्लेखनीय है। बाण ने कादम्बरी और हर्ष-चरित्र लिखे हैं। कहा जाता है कि स्वयं हर्ष ने भी तीन नाटकों और एक व्याकरण पुस्तक की रचना की थी।

दरबार में विद्वानों का जमाव

सम्राट् हर्ष स्वयं भी लेखक था

बौद्ध धर्म की ओर झुकाव—उसने चीनी यात्री यवान

चंग या ह्यूनसांग के प्रभाव से महायान बौद्ध मत को अपनाया। उसने कन्नौज में एक सर्व-धर्म महापरिषद् की। जिसमें सारे मत-मतान्तरों के लोगों और बीस कर देने वाले राजाओं को उक्त चीनी विद्वान् के विद्वतापूर्ण व्याख्यानों को सुनने के लिए बुलाया गया। प्रति दिन बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा का जलूस निकाला जाता। हर्ष स्वयं इसके पीछे पीछे चलता था। उत्सव के बाद ब्राह्मण और बौद्ध विद्वानों को बुलाया जाता और दोनों धर्मों के गुण दोषों पर बहस होती। १८ दिन तक तर्क-वितर्क होता रहा और अन्त में ह्यूनसांग ने अपनी तर्क-विषयक निपुणता के कारण विजय प्राप्त की। हर्ष बौद्ध विहारों को दान दिया करता था। उसने पशु-हत्या का निषेध करने में अशोक से भी अधिक तत्परता से काम किया। उसके समय उसकी राजधानी कन्नौज बौद्ध मत का प्रधान गढ़ हो गया और शीघ्र ही अत्यन्त सुन्दर और सुदृढ़ शहर बन गया।

कन्नौज में सर्व-धर्म महापरिषद्

बौद्ध धर्म की ओर झुकाव रहने पर भी वह किसी अन्य धर्म के साथ असहिष्णुता का व्यवहार नहीं करता था। वह हर पांचवें वर्ष एक सम्मेलन प्रयाग में करता था, जो कि आज कल के समान उस समय भी हिंदुओं का पवित्र तीर्थ स्थान था। इस अवसर पर वह युद्ध-सामग्री को छोड़ कर और सब कुछ दान करता था। ऐसे ही एक अवसर पर प्रयाग में पांच लाख आदमी इकट्ठे हुए। यहाँ बुद्ध, सूर्य्य और शिव की अलग अलग दिनों पर उपासना की गई और हर्ष ब्राह्मणों, बौद्ध भिक्षुओं और कंगालों को उस समय तक दान देता रहा जब तक स्वयं बिल्कुल कंगाल न हो गया।

प्रयाग की परिषद्

ह्यूनसांग—उक्त चीनी यात्री का हर्ष पर बड़ा प्रभाव पड़ा। ह्यूनसांग जिस समय २६ वर्ष की आयु में चीन से भारत के लिए रवाना हुआ उस समय भी वह अपनी विद्वता के लिए प्रसिद्ध हो चुका था। धर्म के उत्साह से प्रेरित होकर वह रास्ते की सारी मुसीबतें झेलता और अनेक अद्भुत घटनाओं का सामना करता हुआ भारत में ६३० ई० में पहुँचा वह यहाँ १५ वर्ष तक रहा और इस बीच में उसने सारा भारत देख डाला। ६४५ ई० में वह यहां से अनेक धर्म-ग्रन्थ, धर्म-चिन्ह और मूर्तियां लेकर चीन को वापस चला गया और उसने अपना बाकी जीवन उन संस्कृत ग्रन्थों का चीनी अनुवाद करने में बिता दिया। वह एक महान् व्यक्ति था जो बहुत से अनुयायियों का नेता था। यह महात्मा और विद्वान् बौद्ध यात्री निरीक्षण में बड़ा सतर्क था और उसने भारत में जो कुछ देखा उसका हमें विशद विवरण दिया है। उसका वर्णन प्राचीन भारत के विषय में ज्ञान प्राप्त करने के लिए खान-स्वरूप है और भारतवर्ष के इतिहास पर ह्यूनसांग का बहुत भारी ऋण है।

महान् विद्वान्

उसका भारत वर्णन—उस समय कन्नौज भारत का सर्व-प्रधान नगर था। शहर चारों ओर फसील और पानी से भरी परिखा से घिरा हुआ था। इसकी विपुल वैभव और सम्पत्ति, दूर दूर विदेशियों को अपनी ओर खींचती थी। पाटलिपुत्र नष्ट हो रहा था। हर्ष के समय के शासन-प्रबन्ध ने ह्यूनसांग के दिल पर अनुकूल प्रभाव डाला, जैसा कि गुप्त समय के शासन ने फाहियान पर डाला था। शासन-प्रबन्ध बड़ी ईमानदारी के साथ होता था। अपराध करने वाली जातियां कम थीं, पर दण्ड-विधान कठोर था। कर हल्के थे। उपज का छठा

शासन प्रबन्ध

भाग कर के रूप में ले लिया जाता था। फ़ाहियान के समय की अपेक्षा सड़कें कम सुरक्षित थीं।

जन साधारण का नैतिक आचरण ऊँचा था। वे बड़ी स्वच्छता से रहते थे। मांस भक्षण कम होता जा रहा था।

जन साधारण

ऊँचे घरानों की स्त्रियां ऊँची शिक्षा पाती थीं। परदे का रिवाज नहीं था। विभिन्न जातियों में शादी ब्याह का निषेध था।

कला-कौशल की स्थापना संघों और गणों के आश्रय पर होती थी। राजनैतिक और साधारण कामों के लिए समुद्र यात्रा खूब जारी थी। शिक्षा का क्षेत्र बड़ा विस्तृत था। पढ़े लिखे लोगों की, जिसमें बौद्ध भी शामिल थे, भाषा संस्कृत थी। नालन्दा और अन्य स्थानों के बड़े बड़े बौद्ध मठ शिक्षा और कला के केन्द्र थे।

नालन्दा विद्या का केन्द्र

बौद्ध धर्म का पतन—ह्यूनसांग के यात्रा वृत्तान्त में हम हिन्दू धर्म का उत्थान और बौद्ध धर्म का पतन पाते हैं। बौद्ध धर्म अब भी प्रबल था पर हिन्दू धर्म शक्ति ग्रहण कर रहा था। बौद्ध धर्म की आरम्भ काल की पवित्रता नष्ट हो गई थी और भिक्षुओं के द्वारा,जो भगवान् बुद्ध की शिक्षायें भूल रहे थे, बौद्धधर्म बिगड़ रहा था। इस सुदीर्घ काल में जब बौद्ध धर्म उन्नति पर था, ब्राह्मण अपने धर्म को लोक-प्रिय बनाते रहे थे और उन बातों को स्वीकार कर लिया, जो कि जनसाधारण के हृदय को अपील करती थीं।

सारांश

गुप्त वंश—चन्द्रगुप्त (३२०-३२६ ई०) इस वंश का संस्थापक

था। लिच्छ की राजकुमारी से विवाह कर इसने अपनी ताकत बढ़ाई। ३२० ई० में इसने एक नवीन संवत की स्थापना की।

समुद्र गुप्त—(३२६–३७५ ई०) यह महान् विजेता भारतीय नैपोलियन के नाम से मशहूर है। इसके साम्राज्य में सम्पूर्ण उत्तरीय भारत शामिल था। इसने अश्वमेध यज्ञ किया। यह एक उत्तम योद्धा, उत्तम गायक और उत्तम कवि था।

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (३७५–४१३ ई०)—इसने मालवा गुजरात और काठियावाड़ को विजय किया। यह एक प्रबल शक्तिशाली और न्यायी शासक था। इसके राज्य-काल में प्रथम चीनी यात्री फाहियान आया (३६२–४१२ ई०)।

फाहियान का यात्रा वृत्तान्त—शासन नरम था, कर हलके थे, कानून कठोर नहीं थे। यात्रा और सड़कें सुरक्षित थीं, देश में असंख्य विहार थे। भिन्न-भिन्न धर्मों के लोग आपस में शान्ति और प्रेम से रहते थे।

गुप्त युग स्वर्ण युग है—इस युग को स्वर्ण युग इन कारणों से कहते हैं:—

(१) हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान—हिन्दू धर्म ने इस काल में विशेष उन्नति की और बौद्ध धर्म पर धीरे-धीरे विजय प्राप्त करनी आरम्भ कर दी।

(२) संस्कृत का पुनरुज्जीवन—संस्कृत को भी एक नया जन्म मिला। कालिदास ने इस काल में ख्याति लाभ की। इस काल के सिक्के और शिला-लेख संस्कृत भाषा में लिखे गए। इस काल में पुराणों को उन्नत रूप मिला।

विद्या की उन्नति—इस समय तक्षशिला, नालन्दा और अजन्ता

के विश्वविद्यालयों में ज्ञान-विज्ञान केन्द्रित था। इन विश्वविद्यालयों में हज़ारों विद्यार्थी शिक्षा पाते थे।

ललित कला और विज्ञान की उन्नति—आर्य भट्ट और वराह मिहर अपने युग के सब से बड़े ज्योतिषि थे। भारतवर्ष इस काल में औषध, शल्य-चिकित्सा, भौतिक विज्ञान और विज्ञान में बहुत आगे बढ़ा हुआ था। वास्तु-विद्या, स्थापत्य-विद्या तक्षण-कला तथा चित्र-कला अपनी उन्नति की सीमा पर थे।

व्यापार और उपनिवेश—पश्चिमी और पूर्वी तटों से व्यापार चल रहा था। इनमें से कुछ व्यापारियों ने जावा, सुमात्रा को बसाया।

सफ़ेद हूण—५वीं शताब्दी के बीच में हूणों ने भारत पर आक्रमण किया। इनके आक्रमण ने गुप्त साम्राज्य को छिन्न भिन्न कर दिया और इसे कई भागों में बांट दिया। छठीं शताब्दी के बीच तक हूणों के हाथ में ताकत रही।

हर्ष वर्धन (६०६–६४८ ई०) विजेता—अपने पिता, जो थानेश्वर का राजा था, की मृत्यु पर हर्ष ने लड़ाई आरम्भ की और पंजाब के सिवाय सारे उत्तरीय-भारत को जीत लिया। दक्षिण की ओर इसकी बढ़नी पुलीकेशी ने रोक दी।

विद्या-प्रेमी—हर्ष स्वयं पण्डित था और बहुत से विद्वान उसके दरबार में रहते थे। इनमें बाण सब से अधिक मशहूर है।

हर्ष का धर्म—इसका बौद्ध धर्म की ओर झुकाव था। चीनी यात्री ह्यूनसांग के प्रभाव का यह फल था। ६४३ ई० में कन्नौज में इसने धर्म-परिषद् बुलाई जिसमें ह्यूनसांग उपस्थित था पर हर्ष अन्य धर्मों का शत्रु नहीं था। हर पाचवें साल प्रयाग में मेला लगता था। इसमें बुद्ध, शिव और सूर्य की मूर्तियों की पूजा होती थी। इस अवसर पर हर्ष

बहुत दान देता था।

ह्यूनसांग का भारत यात्रा वृत—शासन बहुत उत्तम था, कर हल्के थे, कानून कठोर थे, यात्रायें निरापद नहीं थीं।

सामाजिक जीवन—नैतिक जीवन की ऊँचाई और सफ़ाई का आदर्श बहुत उच्च था। परदा उस समय नहीं था। सती प्रथा जारी थी। शिक्षा का बहुत प्रसार था।

बौद्ध धर्म का पतन—बौद्ध धर्म उस समय प्रबलता पर था परन्तु हिन्दू धर्म शक्ति ग्रहण कर रहा था।

प्रश्न

१. समुद्रगुप्त के कार्य-कलाप का विवरण लिखो और इस बात को प्रतिपादित करो कि वह "भारत का नेपोलियन" कहा जा सकता है।

२. गुप्तकाल के शासन को भारत का स्वर्ण युग क्यों कहते हैं? गुप्त राजाओं के शासन-काल में साहित्य और कला की उन्नती का संक्षिप्त विवरण दो।

३. फ़ाहियान कौन था? तुम्हें उसके भारत-वर्णन से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के शासन के विषय में क्या सामग्री मिलती है?

४. गुप्तशासन के "स्वर्ण युग" की सामाजिक रीतियों और आर्थिक दशा का संक्षिप्त विवरण दो।

५. निम्नलिखित विषयों पर छोटे छोटे नोट लिखो:—
भारत के विश्वविद्यालय, "भारत का शेक्सपियर", "सफ़ेद हूण" फ़ाहियान, नालन्दा।

६. हर्ष के शासन का संक्षिप्त विवरण दो। ह्यूनसांग द्वारा वर्णित

भारतीय वृत्त का संक्षेप में उल्लेख करो।

७. भारत पर हूणों के आक्रमण के बारे में तुम क्या जानते हो ?

८. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का जीवन और राज्य-काल का संक्षिप्त वर्णन करो और भारत का माप-चित्र दो जिसमें चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राज्य-सीमा दिखाओ।

भारतीय सभ्यता का प्रसार

कुछ हाल की खोजें—चिरकाल से लोगों में यह धारणा सी हो गई है कि भारतवासी "घर पर बैठे रहने वाले" थे; पर्वतों और समुद्रों की रुकावटों के कारण संसार के और लोगों से उन का कोई सम्बन्ध नहीं था। पर हाल ही की खोजों से एशिया के बहुत से हिस्सों में भारत की सभ्यता के बहुत से चिन्ह मिले हैं। अब हमारे लिए प्राचीन भारत का चित्र कुछ अधिक विस्तृत रूप से दर्शाना सम्भव हो गया है। भारत की स्थिति एशिया के इतिहास में क्या थी—यह बात अब पहले से अधिक अच्छी तरह बताई जा सकेगी।

पूर्व में भारत की सभ्यता—अब हमें पता लगता है कि भारत के प्राचीन निवासी समुद्र यात्रा करते थे और उपनिवेश कायम करते थे। ईसा की प्रारम्भिक शताब्दियों से, और शायद उससे भी तीन या चार शताब्दियां पहले से "हिन्द महासागर, सचमुच हिन्द महासागर रहा था।" भारतवर्ष की छाप पूर्व के अनेक देशों पर स्थायी रूप से लग गई थी। उनमें से

कुछ को तो भारतवर्ष ने धर्म और संस्कृति का अधिक भाग प्रदान किया; और कुछ की स्थापना ही भारत की संस्कृति के आधार पर हुई। पहली श्रेणी के देशों में लङ्का, बर्मा, स्याम, अनाम, नैपाल, तिब्बत, मध्य एशिया, मंगोलिया, चीन और जापान है। इन देशों में भारत की सभ्यता का प्रसार आपस के शांतिपूर्ण सम्पर्क या धर्मप्रचार से हुआ। हां, चीन की सभ्यता भारत की सभ्यता का मुक़ाबला करती थी, पर तब भी भारत ने उस से कुछ नहीं लिया, अपितु चीन ही ने बहुत-सी बातें भारत से अपनाईं।

शान्तिपूर्ण सम्पर्क

दूसरी श्रेणी के देशों में कम्बोडिया, चम्पा, जावा, सुमात्रा, बोर्नियो और बाली हैं। इन देशों में भारत के विक्रमशील लोगों ने ईसवी सन के आरम्भ में अपने उपनिवेश कायम कर लिए थे। सारे दक्षिण-पूर्व एशिया में किसी ज़माने में भारत के उपनिवेशों की स्थापना हुई थी और भारत की वास्तु और मूर्ति-कला, धर्म और न्याय-विधान का प्रचार था। उन देशों में अनेक शिला-लेख संस्कृत में मिलते हैं और ऐसा मालूम होता है कि किसी समय संस्कृत-साहित्य का अध्ययन प्रचलित रहा होगा।

भारत के उपनिवेश

इस भारतीय संस्कृति का प्रसार इतने धीरे-धीरे हो रहा था कि भारत के लोगों का ध्यान इसकी ओर बहुत कम गया। यह अपरिचिति विजय के मद का परिणाम नहीं थी, बल्कि एक उत्कृष्ट संस्कृति का अपनी सीमा से बाहर स्वाभाविक प्रवाह था।

यह बाहरी गति सभ्यता को फैलाने में एक बड़ा सहकारी कारण

सभ्यता को फैलाने में बड़ा सहकारी कारण

सिद्ध हुई। जान पड़ता है कि आरम्भ में भारतीय औपनिवेशकों को दक्षिण-पूर्व एशिया की आनन्दमय घाटियों और सुन्दर द्वीपों में असभ्य नंगे मनुष्य मिले। इन लोगों के पास हमारे देश-वासी कला और साहित्य, न्याय-विधान और रीति-रिवाज, भाषा और धर्म, तथा अपनी उत्कृष्ट सभ्यता की सभी बातें ले गए। कम्बोडिया के खुमेरों, चम्पा के चामों, स्याम के थाइयों और जावा के मलाया लोगों ने, एक सिरे से दूसरे सिरे तक, भारतीय विचारों को ग्रहण किया। और जब उनकी छिपी हुई प्रतिभा में एक बार स्फूर्ति उत्पन्न हो गई, तब उन्होंने कला के उत्कृष्ट नमूने तय्यार कर डाले।

कम्बोडिया—प्राचीन भारत ने जितने उपनिवेश कायम किये थे उनमें कम्बोडिया (जो इण्डो-चीन में है) सब से अधिक शक्तिशाली था। हिन्दुओं ने यहाँ अपना राज्य ईसवी सन् की पहली शताब्दी में कायम किया था। उन्होंने यहाँ पर भारत की अनेक रियासतों के शासन-प्रबन्ध के आधार पर एक शक्तिशाली राज्य स्थापित किया। यह एक धनी और उपजाऊ देश था।

कम्बोडिया का उत्थान

उसके औपनिवेशकों की शक्ति शीघ्रता से बढ़ने लगी। आठवीं और नवीं शताब्दी में वे उन्नति की ऊंची अवस्था को पहुंच गए। उन्होंने अपने राज्य का विस्तार किया और उस स्थान पर अपनी सुन्दर राजधानी स्थापित की जो अब अंगकोरथाम के नाम से प्रसिद्ध है। इस सुन्दर शहर के खंडहर कम्बोडिया के जंगलों में अब तक देखे जा सकते हैं।

इस शक्तिशाली उपनिवेश का पतन तेरहवीं शताब्दी में होना आरम्भ हुआ। सब से पहले उनकी हार पूर्वी लोगों के हाथों हुई, और फिर वह विजयी स्याम के हाथों पूरी तरह नष्ट हुए। उस समय के प्राचीन वैभव की एक स्मृति कम्बोडिया के वर्तमान राज्य में, जो वर्तमान समय में फ्रैंच संरक्षण में है, अब भी विद्यमान है।

पतन

चम्पा—कम्बोडिया के उत्तर में चम्पा नामक उपनिवेश था, जिसकी राजधानी अमरावती थी। इस राज्य की स्थापना भी ईसा की पहली शताब्दी में ही हुई थी और यह अनेक घटती बढ़तियों में से गुज़रता हुआ पन्द्रहवीं शताब्दी तक कायम रहा। कुछ समय तक इस पर दक्षिण के शक्तिशाली पड़ोसी कम्बोडिया का शासन रहा। यह उपनिवेश भारत और चीन की दो महती सभ्यताओं की बीच की शृंखला थी। दुर्भाग्य-वश यह अनामियों के धावे से नष्ट हो गया।

चम्पा

कम्बोडिया में तो हमें भारतीय विचारों, रीतिरिवाजों और रहन-सहन के कुछ अंश देखने को मिल जाते हैं, पर चम्पा के निवासी अब अपने भारत सम्बन्ध को बिल्कुल भूल गए मालूम होते हैं। वहाँ के अधिकांश निवासियों ने अब इस्लाम-धर्म स्वीकार कर लिया है।

जावा और सुमात्रा—जावा और सुमात्रा में भी बहुत दिनों पहले हिन्दुओं का राज्य था। ये स्थान भारत के बहुत निकट हैं, अतः भारत के उपनिवेश कायम करने वालों ने सब से पहले इन्हीं पर अधिकार किया। दक्षिण-भारत में अब भी एक कहावत है कि जो जावा को चला गया वह लौट कर

Indian Art in Cambodia—(Angkor Vat)
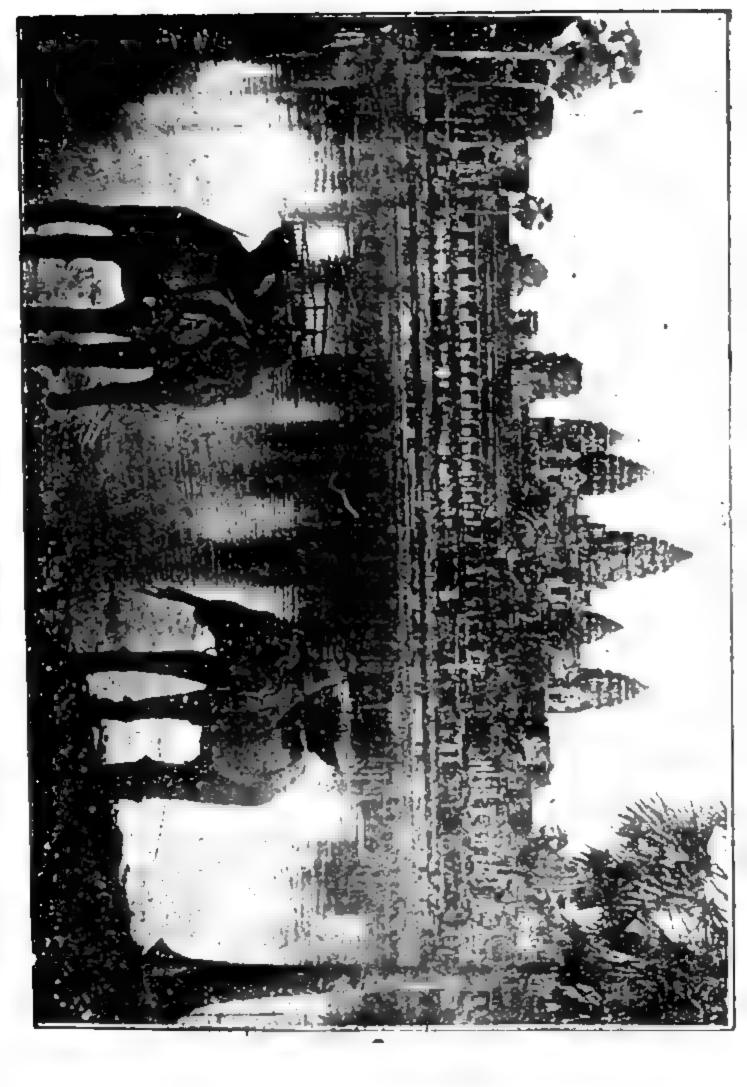
Indian Sculpture from Java
(Buddhist Goddess of Wisdom)

नहीं आता। जब चीनी यात्री फ़ाहियान पांचवीं शताब्दी में अपने घर को लौटा था, वह इसी द्वीप से होकर गुज़रा था। वह हमें बताता है कि वहां हिन्दू धर्म खूब उन्नति पर था। सातवीं शताब्दी में सुमात्रा में शैलेन्द्र वंश का शक्तिशाली राज्य स्थापित हो गया। ये लोग कट्टर बौद्ध मतानुयायी थे। उनकी राजधानी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र थी। इनके संरक्षण में कला के उत्कृष्ट नमूने तैयार हुए।

शैलेन्द्र वंश

बोर्नियो और बाली—भारतीय सभ्यता के चिन्ह सुदूर बोर्नियो में भी पाए गए हैं। बाली में हिन्दू धर्म बिगड़े हुए रूप में अब तक प्रचलित है। वहां हिन्दू मन्दिर पाए जाते हैं और लोग हिन्दू देवताओं की पूजा करते हैं।

भारतीय औपनिवेशिक कला—इन उपनिवेशों के इतिहास का सब से अधिक मनोरंजक विषय कला का विकास है। इसमें सन्देह भी नहीं किया जा सकता कि यह कला वहां एक दम या धीरे धीरे भारत से गई। किन्तु वहां पहुँचते पहुँचते वह भारत की कला से भिन्न और निसन्देह उत्कृष्ट हो गई। उसके निर्माण किसी की नकल या छाया नहीं है, बल्कि एक आविष्कारिणी और साहसपूर्ण प्रतिभा की उत्कृष्ट रचनाएँ हैं। इस पर अनेक नवीन प्रभाव पड़े और इस प्रकार यह कला अपनी जन्मदात्री कला की तरह नियम उपनियम में बँधी न रह सकी। कम्बोडिया का बारहवीं शताब्दी में बना हुआ अङ्गकोरवात नामक मन्दिर वैभव में निराला है। बनावट के ढंग की सुन्दरता और सजावट की भव्यता तथा सुरुचि के कारण यह कम्बोडिया के निर्माण-शिल्प की अत्यन्त

अङ्गकोरवात

उत्कृष्ट सृष्टि है। बोरोबुडुर स्तूप न केवल जावा का ही बल्कि सारे बौद्ध-संसार का सब से विशाल और विख्यात स्तूप है। हर साल हज़ारों निपुण कलाविद् निर्माण-शिल्प के इस विशाल पर्वत को खड़ा करने में मशगूल रहे होंगे। इन स्मारकों में मूर्तिकला का जैसा दिग्दर्शन कराया गया है वह सर्वोत्कृष्ट कला सम्बन्धी अनुभूति का व्यक्त रूप है और बनाने वाले की कल्पना की अनुपम प्रतिभा है।

डा० .फीनो कहता है—"पर्याप्त चिर काल तक भारत समझता रहा था कि वह केवल प्रायःद्वीप के किनारों तक ही नियन्त्रित है, आज वह अपनी सीमा से बाहर आश्चर्यजनक दृष्टि से अपने किसी समय के उपनिवेशों की ओर देख रहा है, उस स्वर्णमय प्रायःद्वीप और उन द्वीपों पर दृष्टि डाल रहा है जहां उसकी स्फूर्ति पाकर कला के ऐसे ऐसे सुन्दर प्रदर्शन तैयार हुए और वह समय दूर नहीं है जब नवीन भारत के पढ़े लिखे लोग अङ्कोर में आकर अपनी जातीय संस्कृति के एक सर्वोत्कृष्ट प्रमाण पर भक्ति-पुष्प चढ़ाएँगे।"

प्रश्न

१. भारत के सुदूर पूर्व-स्थित उपनिवेशों का पूरा विवरण लिखो और बताओ कि वे किस प्रकार स्थापित हुए।

२. कम्बोडिया, जावा और बोर्नियो में उनके उपनिवेश होने के क्या चिन्ह मिलते हैं ?

३. एक निबन्ध में कम्बोडिया का भारत के उपनिवेश की हैसियत से उत्थान और पतन दिखाओ।

दक्षिण के राज्य

दक्षिण—हम पहले ही कह चुके हैं कि दक्षिण शेष भारत-वर्ष से अलग-सा है और भारत के इतिहास में उसका गौण स्थान रहा है। उत्तर-भारत के सम्राट् दक्षिण के राज्यों पर स्थायी विजय कभी प्राप्त नहीं कर सके। उनकी सेना दक्षिण के अन्त तक बहुत ही कम पहुंच सकी। ईसवी संवत् के पूर्व का दक्षिण का इतिहास अप्राप्य-सा है, पर बाद की काफ़ी ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त हो चुकी है। कुछ समय से विद्वानों ने दक्षिण के इतिहास की ओर विशेष ध्यान दिया है।

नस्ल और सभ्यता

नस्ल के लिहाज़ से दक्षिण में द्रविड़ रक्त की प्रधानता है, पर धर्म के लिहाज़ से हिन्दूधर्म ने पूर्ण विजय प्राप्त की है। यहीं पर वर्ण-व्यवस्था ने अपना सब से बुरा रूप धारण किया। दक्षिण में हिन्दुओं, जैनों और बौद्धों का पारस्परिक झगड़ा भी खूब ज़ोर पर रहा।

अशोक के शिला-लेख में हमें आंध्र और अन्य देशी रियासतों के उल्लेख मिलते हैं। दूसरा विश्वासनीय प्रमाण मेगास्थनीज़ का

आंध्र

है, जिसके अनुसार ईसा पूर्व की चौथी शताब्दी में आंध्र एक शक्तिशाली जाति थी। मौर्य्य साम्राज्य के पतन के बाद आंध्र राजवंश ने सारे दक्षिण में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया और कुछ दिनों तक उत्तर भारत के भी अनेक प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व फैला लिया। वे साढ़े चार शताब्दियों तक राज्य करते रहे। इस वंश के राजा प्राकृत-साहित्य के बड़े भारी संरक्षक थे। उनकी राजधानी अमरावती के निकट पैठान में थी। उनकी शक्ति का ह्रास शक राजाओं के साथ युद्ध करने के बाद से (अर्थात् ईसवी संवत् की दूसरी शताब्दी से) आरम्भ हो गया।

आंध्र वंश के पतन होने के बाद पल्लव वंश ने ज़ोर पकड़ा। समुद्रगुप्त ने ईसा की चौथी शताब्दी में जिन अनेक राजाओं को अपने अधीन किया था उनमें कांची के एक राजा विष्णुगोप का नाम भी आता है। वह पल्लव राजा था। उसका सब से अधिक महत्त्वपूर्ण नगर कांची था जो आजकल कांजीवरम के नाम से प्रसिद्ध है। इस राजवंश की अनेक शाखाएँ इस राज्य पर ३०० ई० से आठवीं शताब्दी के मध्य तक शासन करती रहीं।

पल्लव

दक्षिण में दूसरी महान् शक्ति चालूक्यों की थी। वे प्रसिद्ध अग्निकुल राजपूतों में से थे और हिन्दू धर्म के बड़े संरक्षक थे। उनकी पल्लव राजाओं से अनेक लड़ाइयां होती रहती थीं। उनकी शक्ति का उत्थान पुलिकेशिन् द्वितीय की अधीनता में हुआ जब कि उक्त राजा ने हर्ष को आगे बढ़ने से रोक दिया था। ह्यूनसांग नामक चीनी यात्री उसके दरबार में भी आया था जो इस राज की शक्ति और प्रजा की समृद्धि का वर्णन करता है।

चालूक्य

यह विश्वास किया जाता है कि पुलिकेशिन् द्वितीय का राजनैतिक सम्बन्ध फ़ारस से भी था। आठवीं शताब्दी में चालुक्य शक्ति को बड़ा धक्का लगा। हाँ, वैसे उसकी सत्ता और भी अनेक शताब्दियों तक बनी रही। चालुक्य राजवंश की अधीनता में हिन्दूधर्म ने अपने प्रतिद्वंद्वियों के विरुद्ध बड़ी शक्ति प्राप्त की थी। उन दिनों दक्षिण में असंख्य हिन्दू मन्दिर बनाए गए।

सुदूर दक्षिण अनेक तामिल रियासतों में बँटा हुआ था, जिनमें पाण्ड्य, केरल और चोल सब से अधिक प्रसिद्ध थीं। तामिल लोग सामुद्रिक जीवन बिताते थे और पूर्व तथा पश्चिम के दूरस्थ देशों से लाभदायक व्यापार करते थे। वे बड़े-बड़े जहाज़ी बेड़े रखते थे। उन्होंने अपनी भाषा को बहुत विकसित रूप दे दिया था। इस भाषा में बड़ा उत्कृष्ट साहित्य मौजूद था।

तामिल रियासतें

ये तामिल रियासतें प्रायः सदैव आपस में लड़ती भिड़ती रहती थीं। पाण्ड्य-राज लंका के साथ लड़ता रहता था। केरल का राज्य अर्थात् दक्षिणी मालाबार, आसाम की तरह, मुसलमानों के अधिकार में कभी नहीं आया। दसवीं शताब्दी के अन्त में उक्त दोनों रियासतें अपने शक्तिशाली पड़ोसी चोल के आधीन हो गईं।

चोल राज्य तामिल की सारी रियासतों में सब से अधिक शक्तिशाली और प्रबल था। यह राज्य पाण्ड्य राज्य के उत्तर में स्थित था और इसमें मैसूर का अधिकतर भाग सम्मिलित था। चोल लोगों का सामुद्रिक व्यापार खूब उन्नति पर था और उनके वैभव काल में उनका बलशाली बेड़ा पूर्व में जावा और सुमात्रा तथा पश्चिम में मिश्र देश तक जाता था।

चोल राज्य

दक्षिण में राजपूत राज्य—मुस्लिम आक्रमणों के समय दक्षिण में राजपूत राजा भी राज्य करते थे, जिनमें सब से अधिक उल्लेखनीय चालुक्य, होयसाल और यादव थे। यादवों ने, जिनका ज़िक्र महाभारत में आया है, दक्षिण में एक शक्तिशाली राज्य स्थापित कर लिया था और देवगिरी को अपनी राजधानी बनाया था। कुछ समय तक यह राज्य चालुक्यों की प्रभुता भी स्वीकार किए रहा। बहुत दिनों तक इनका राजधर्म जैन धर्म रहा, पर बाद में उसके राजा फिर हिन्दू धर्म में दीक्षित हो गए। उनके राज्य की शक्ति खिलजियों के प्रारम्भिक आक्रमण से नष्ट हो गई।

प्रश्न

१. दक्षिण की प्रारम्भिक स्थिति का संक्षेप से वर्णन करो।

२. निम्नलिखित राज्यों के उत्थान और पतन की कथा लिखो—
चालुक्य, तामिल रियासतें, यादव।

३. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो—
कांची, पैठान, पुलकेशिन द्वितीय, केरल, देवगिरी।

राजपूतकाल (६५०–१२०० ई०)

राजपूतों का उत्पत्ति

हर्ष के बाद से मुस्लिम विजय तक छः शताब्दियों का समय भारत से बड़े बड़े राजपूत राज्यों के कायम होने और उनके आपस में निरन्तर लड़ने झगड़ने का समय है। ये राजपूत, राज-वंशावली बनाने वालों की विचक्षणता के होते हुए भी, जाति की हैसियत से रक्त की पवित्रता का दावा नहीं कर सकते। उनमें से बहुत से पवित्र आर्य रक्त के क्षत्रिय वंशज थे; पर बहुतों के बारे में विश्वास किया जाता है कि वे उन विदेशी आक्रमण कारियों के, जो पश्चिमी-भारत में आकर बस गए थे, या यह की मूल जातियों के, वंशज हैं। आर्य जाति में नई नई सैनिक जातियों के मिश्रित होने के लिए वर्ण-व्यवस्था में काफ़ी गुंजाइश थी। हम यह देख ही आए हैं कि जिन विदेशी जातियों ने भारत

विदेशी जातियों का धर्म परिवर्तन

पर धावा किया था, उनमें से अनेक यहीं आकर बस गईं और शीघ्रता के साथ हिन्दू जाति में मिलगईं। उनमें से कुछ हिन्दू धर्म के

संरक्षक बने। अनेक इतिहासकार इस बात से सहमत नहीं हैं, और कहते हैं कि राजपूत रक्त में इस प्रकार की मिलावट नहीं है।

राजपूतों का आचार-व्यवहार—राजपूतों की वीरता और महानुभावता वीर-काव्यों में वर्णित आदर्शों के अनुरूप ही रही है। वे क्षात्र-धर्म का बड़ी दृढ़ता से पालन करते थे और उनका पिछला इतिहास हमेशा निष्कलङ्क और आदरणीय रहा। उनका बच्चा बच्चा शेर था, और कई एक अवसरों पर उनकी स्त्रियां भी अपनी राजपूती वीरता का रोमांचकारी परिचय देती थीं। राजपूत स्त्री-जातिके सतीत्व का बड़ा मान करते थे और अपनी बात के पक्के होते थे।

वीरता

धर्म

उत्तर भारत के मध्यकालीन हिन्दू राज्य

राजपूतों द्वारा स्थापित शक्तिशाली राज्यों का विस्तृत विवरण करने के अलावा हम उत्तर भारत के अन्य हिन्दू राज्यों का भी संक्षेप में वर्णन करेंगे।

१. नैपाल—नैपाल की सुन्दर घाटी तिब्बत और भारत का सम्बन्ध जोड़ने वाली रही है। इस पर अनेक राजवंश राज्य करते रहे जो केवल अशोक, समुद्रगुप्त और हर्ष जैसे सम्राटों का आधिपत्य स्वीकार करते थे। हर्ष के बाद यह राज्य कोई एक सदी तक तिब्बत के अधीन रहा। भारत का एक यही भाग ऐसा है, जहां बौद्ध मत अपने विगड़े हुए रूप में अब तक मौजूद है, नैपाल की कला तिब्बत की कला से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती है।

२. काश्मीर—हमें काश्मीर का इतिहास राज तरङ्गणी नाम की एक प्रमाणिक इतिहास की पुस्तक से मिलता है। पर

राजतरंगिणी

इसकी कथाएँ बाक़ी भारत से बहुत कम सम्बन्ध रखती हैं।

३. आसाम—आसाम या कामरूप एक शक्तिशाली राज्य रहा है। बाहरी हमलों से प्रकृति स्वयं ही इसकी रक्षा करती रही है। यहाँ बौद्ध मत कभी न फैल सका। बाद में इस राज्य पर मुसलमानों के सारे आक्रमण भी बुरी तरह विफल हुए। आसाम मंगोलियन और भारतीय आदर्शों का क्रीड़ास्थल था, जहाँ हिन्दू धर्म ने एक विचित्र रूप धारण कर लिया था। तेरहवीं शताब्दी में ऊपरी बरमा की एक जाति ने इस पर हमला किया, पर वह भी हिन्दू धर्म में मिल गई।

मंगोलियन और भारतीय संस्कृतियों का संमिश्रण

४. पाल राजवंश—हर्ष के मरने के बाद बिहार और बंगाल में बहुत दिनों तक अराजकता रहने के बाद आठवीं शताब्दी में पाल नामक एक शक्तिशाली राजवंश की स्थापना हुई, जो राजवंश मुस्लिम आक्रमण तक क़ायम रहा। ग्यारहवीं शताब्दी के आरम्भ में दक्षिण के शक्तिशाली चोल राजा के आक्रमण से इसकी शक्ति घट गई और इसके बाद ही बंगाल में सेनवंश स्थापित हुआ।

५. गुर्जर—गुर्जरों के बारे में, जिनके नाम पर गुजरात के सुन्दर प्रदेश का प्रचलित नाम पड़ा, विश्वास किया जाता है कि वे एक ऐसी विदेशी जाति के वंशज थे, जिसने सफ़ेद हूणों के ज़माने में प्रसिद्धि पाई थी। उन्होंने दक्षिण राजपूताना में एक राज्य क़ायम किया जिसकी राजधानी भिमाल थी। ग्यारहवीं शताब्दी में उनकी एक शाखा ने कन्नौज पर अधिकार करके शक्तिशाली परिहारवंश की स्थापना की जो महमूद ग़ज़नवी

परिहार

के समय तक वहाँ राज्य करता रहा। उनके प्रसिद्ध राजाओं में से एक राजा भोज था, जिसका राज्य सतलुज से नर्मदा तक और सिंध से बिहार तक फैल गया था। भोज के पास एक शक्ति-सम्पन्न सेना थी और उसका शासन-प्रबन्ध सुन्दर था। वह प्रसिद्ध नाट्यकार राजशेखर का आश्रय-दाता था।

भोज

६. चंदेल राजवंश—चंदेल राजवंश का उत्तरी-भारत के इतिहास में तीन शताब्दियों तक काफ़ी महत्व रहा। इनकी उत्पत्ति गोंडों से कही जाती है। कालंजर में इनका एक दृढ़ दुर्ग था। यह राज्य मुस्लिम विजय तक कायम रहा और मुस्लिम विजय के बाद भी बुंदेलखण्ड के जंगलों में इसका स्थानिक आधिपत्य बना रहा। चंदेलों ने अनेक भव्य भवन और मन्दिर बनवाए।

७. मालवा के प्रमार—पमारों ने मालवा में एक राजवंश कायम किया था। इस वंश का सब से प्रसिद्ध राजा ग्यारहवीं शताब्दी का राजा भोज था। यह बड़ा विद्वान् था और कला और साहित्य की उन्नति करने वाला था।

भोज

८. कन्नौज के गहरवार—ग्यारहवीं शताब्दी में कन्नौज पर परिहारों के स्थान पर गहरवारों का अधिकार हो गया और ११९४ ई० में उसके शासक जयचन्द के मुहम्मद गोरी द्वारा हराये और मारे जाने तक कायम रहा। यह राज्य समृद्ध था और इसमें बनारस भी शामिल था।

राजा जयचन्द

९. दिल्ली के तोमार—वर्तमान दिल्ली की स्थापना सम्भवतः दसवीं शताब्दी के अन्त में हुई। ग्यारहवीं शताब्दी में इस पर तोमर राजाओं का अधिकार था, जिन्होंने अनेक मन्दिर बनवाए।

अगली शताब्दी में यह चौहानों के हाथ में चली गई।

१०. अजमेर के चौहान—चौहानों का सब से प्रसिद्ध राजा पृथ्वीराज हुआ। दिल्ली उसे अपने नाना से प्राप्त हुई थी।

पृथ्वीराज

उसका जयचन्द की लड़की को उठा ले जाना चारणों का प्रसिद्ध विषय रहा था। उसने बुंदेलखंड के चंदेलों को हराया। उसने सन ११६१ में मुहम्मदगोरी को हराया, पर दूसरे ही साल उसे ग़ोरी ने हरा कर मार डाला।

चन्दबरदाई का रासो पृथ्वीराज के वीरतपूर्ण काय्यों का वर्णन

वीरता और महानुभावता के लिए उसका नाम उत्तर-भारत में प्रसिद्ध है। उसके वीरता-पूर्ण काय्यों का वर्णन पृथ्वीराज रासो में किया गया है, जिसका रचयिता पृथ्वीराज का राज-कवि चन्दबरदाई था। इस कविता को चारणों ने समय-समय पर बहुत बढ़ा दिया है।

मेवाड़ के ससोदिया—मेवाड़ का वर्तमान राजवंश प्रसिद्ध वल्लभी राजवंश का वंशज बताया जाता है जिसे बापा रावल ने स्थापित किया था। इस स्वाभिमानी राजपूतवंश के वीरतापूर्ण काय्यों का मध्यकालीन भारत के इतिहास में बहुत ऊँचा स्थान है। इसके राजाओं को अन्य सारे हिन्दू राजाओं से अधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता है। इस वंश के राजा को हिन्दुओं का सूरज कहा जाता है।

सिन्ध पर अरब का आक्रमण—सातवीं शताब्दी में अरब लोग मुसलमान हो गए और उनकी शक्ति विश्वव्यापिनी हो चली। उन्होंने फ़ारस और ईराक़ पर विजय प्राप्त करली थी और अब वे शीघ्रता से सिंध की ओर बढ़ रहे थे। आठवीं शताब्दी

के आरम्भ में सिंध के निकट डाकुओं ने अरबों का एक जहाज़ पकड़ लिया था। इसके बाद ही ७१२ ई० में मुहम्मद बिन क़ासिम की अधीनता में सिंध पर एक सेना ने हमला किया। यह सत्रह वर्ष का नवयुवक एक फुर्तीला सेनापति और चतुर शासक था। इसने सिंध के राजा दाहिर को घोर युद्ध के बाद हरा दिया और उसके राज्य के मुख्य मुख्य शहर मुल्तान आदि अपने अधिकार में कर लिए। उसके वीरतापूर्ण कार्य्यों का बीस वर्ष की आयु में अन्त हो गया पर उसकी विजय इतनी स्थायी और प्रभावशालिनी थी कि उस समय से सिंध बराबर मुसल्मानों के अधिकार में ही रहा। इस थोड़े से समय में उसने मेल-जोल की नीति बरती और लोगों के हृदयों में अपना विश्वास जमाया। वह हिन्दू रीति-रिवाजों और संस्थाओं को आदर की दृष्टि से देखता था।

मुहम्द बिन क़ासिम

सिंध बग़दाद की नाम-मात्र की अधीनता में दो शताब्दियों तक रहा। इसके बाद अनेक छोटे-छोटे राज्य स्थापित हुए और उस समय तक कायम रहे जब मुस्लिम आक्रमण का दूसरा और प्रबल-तर प्रवाह इस देश में आया।

मुस्लिम विजय के समय हिन्दू सभ्यता की दशा

शक्ति का अभाव

यह हिन्दुओं का घटती का समय था। राजनैतिक दृष्टि से देश में ऐसी कोई शक्ति नहीं थी जो अपना आधिपत्य स्थापित करती। धर्म के मामले में हिन्दू धर्म, हरएक सम्प्रदाय को अपनी विशाल परिधि में जगह देने के कारण, इस समय भी अपनी पुरानी जीवन-

घटती का समय

Eearly Mediaeval Hindu Art (Bhuvaneshvara temple)

A Hindu Chief in Mediaeval India

शक्ति कायम रखने में अशक्त हो चला था। धर्म, रीति-रिवाजों का दूसरा नाम हो गया था। सामाजिक दृष्टि से वर्ण-व्यवस्था अत्याचार का यंत्र हो गई थी जिसके द्वारा अधिकांश जन-समुदाय को गिरी हुई दशा में रक्खा जाता था। साहित्य में गुप्तकाल की परिष्कृत शैली के स्थान पर कृत्रिमता ने अधिकार कर लिया था। कला और वास्तु-विद्या में, यद्यपि उनमें कभी कभी सुन्दरता और लालित्य प्राप्त हो जाता था मौलिकता और संयम नहीं रहा था। असंख्य समृद्ध मन्दिरों के बनने से पुरोहितों और पुजारियों की संख्या बढ़ चली थी, इन पुरोहितों की दृष्टि ऐसी उदार नहीं थी, जिससे वे अपने अनुयायियों को लाभ पहुँचा सकते।

वर्ण-व्यवस्था के अत्याचार

काल का पतन

अनभिज्ञ ब्राह्मण पुरोहित

बौद्ध धर्म का ह्रास—इस काल की उल्लेखनीय स्थिति बौद्धमत की घटती, पतन और अन्त में भारत से उसका पूर्णतया अदृश्य हो जाना है। पतन में काफ़ी देर लगी। पर अनेक प्रदेशों में उसके गिरने का वेग बड़ा आश्चर्यजनक था। हिन्दू धर्म का आन्दोलन, जिसने यदि बौद्ध मत को नष्ट नहीं किया था तो कम से कम पराजित अवश्य कर दिया था, आठवीं और नवीं शताब्दी के कुमारिल भट्ट और शङ्कराचार्य्य के नाम के साथ जोड़ा जाता है।

शीघ्रता-पूर्ण ह्रास

शङ्कराचार्य्य

शङ्कराचार्य्य की क्रान्ति के बाद बौद्धमत केवल पाल राज्य

विक्रमशिला का विश्वविद्यालय

में रह गया जहां विक्रमशिला का प्रसिद्ध विश्वविद्यालय तर्क, व्याकरण और दार्शनिक विद्या का केन्द्र था जिसका तिब्बत के साथ सम्बन्ध था।

बौद्ध मत मिला लिया गया

हमें यह याद रखना चाहिए कि हिन्दू धर्म ने बौद्ध धर्म का बहिष्कार नहीं किया, किन्तु उसे अपने में शामिल कर लिया। उसने अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी धर्म की अनेक बातें ग्रहण कर लीं।

बौद्धमत का ध्वंस

मुसलमानों के बिहार और बङ्गाल पर अधिकार करने के बाद वहां से बौद्ध मत बिल्कुल नष्ट हो गया। भीत-चकित भिक्षु अपने संघारामों को छोड़ कर दुर्गम स्थानों में जाकर रहने लगे। जो नहीं गए, वे मुसलमानों की तलवार के शिकार बने। हिन्दू धर्म सारे देश में फैला हुआ था पर बौद्ध धर्म केवल बड़े बड़े संघारामों तक ही परिमित था और जब वे खाली हो गए या नष्ट कर दिए तो बौद्ध धर्मानुयायी जन-साधारण हिन्दू धर्म की हड़प करने वाली शक्ति के आगे अपनी रक्षा न कर सके।

राजपूत

राजनैतिक स्थिति——देश की राजनीति में सबसे अधिक बोलबाला राजपूतों का था। युद्ध ही उनका जीवन था, क्योंकि यह कहा गया है कि जो राजपूत "घर में चारपाई पर पड़ा पड़ा मर जाता है, उसका राजपूत-जन्म ही बेकार है।" उनका वीरोचित उत्साह उनके चारणों द्वारा जीवित रक्खा जाता था।

छोटी छोटी रियासतें

तब हिन्दुस्तान अनेक छोटी छोटी रियासतों में बँटा हुआ था जिनमें सब से अधिक महत्वपूर्ण

अजमेर के चौहान, कन्नौज के राठौर, मेवाड़ के सीसोदिया और बुन्देलखण्ड के चन्देल थे।

संकीर्ण राजनैतिक दृष्टिकोण—इस समय के हिन्दुओं का राजनैतिक दृष्टिकोण बड़ा संकीर्ण था। वे अपने पड़ोसी देशों के बड़े २ राजनैतिक आन्दोलनों और परिवर्तनों से बिल्कुल अनभिज्ञ थे। इन सारी रियासतों में ऐसी कोई शक्तिशालिनी रियासत नहीं थी जो बाकी सब पर अपना प्रभुत्व स्थापित करती। वे एक दूसरी से ईर्षा रखती थीं और आपस में लड़ती रहती थीं। जब उन्हें अपने मुसलमान शत्रुओं का सामना करना पड़ता, उस समय उनकी अद्भुत वीरता व्यर्थ नष्ट हो जाती थी; क्योंकि उनमें एकता का वह बन्धन नहीं था जो उनके शत्रुओं में बहुत बढ़े चढ़े रूप में विद्यमान था।

सार्वभौम शक्ति का अभाव

एकता की कमी

युद्धकला में अनभिज्ञता—वीरता, साहस और मृत्यु को उपेक्षा की दृष्टि से देखने में राजपूत संसार की किसी जाति से कम नहीं थे, पर अनेक शताब्दियों से एक जगह रहने से उनमें पहले सी युद्धकला और चतुरता नहीं रही थी। वे युद्ध के उन ढंगों से अपरिचित थे जो उनके पश्चिमी पड़ौसी अपनाते थे। उनकी हाथियों की सेना घुड़सवार सेना का अधिक देर तक सामना नहीं कर सकती थी, और हाथी शत्रु सेना की अपेक्षा अपनी सेना को ही अधिक हानि पहुँचाते थे। राजपूतों की ढीले और अस्थायी मित्रदल अधिक दिनों तक नहीं रहते थे और आसानी से टूट जाते थे।

नीति सम्बन्धी अनभिज्ञता

शिथिल मित्रदल

सारांश

राजपूतों की उत्पत्ति—राजपूतों का यह दावा है कि वह प्राचीन क्षत्रियों के वंशज हैं। इस विचार में कुछ सचाई है। अनेक ऐतिहासिकों की सम्मति में बहुत से राजपूत उन अनार्य्य आक्रमणकारियों के वंशज हैं जो कि हिन्दू धर्म में मिल गए थे या वह हिन्दुस्थान के पुराने निवासियों की औलाद हैं।

राजपूत जाति की विशेषताएँ—राजपूत लोग अपनी वीरता और युद्ध-प्रियता के लिए प्रसिद्ध थे। वह अपनी शान के लिए जानें लड़ा देते थे। अपनी बात के पक्के हुआ करते थे।

राजपूतों के राज्य—नैपाल, काश्मीर, आसाम, बिहार, बंगाल, गुजरात, बुन्देलखण्ड, मालवा, कन्नौज, देहली, अजमेर और मेवाड़।

प्रश्न

१. मध्यकालीन भारत के राजपूतों की प्रसिद्धि किन कारणों से हुई?

२. निम्नलिखित स्थानों पर राज्यों की स्थापना का संक्षेप में वर्णन करो:—बङ्गाल, काश्मीर, आसाम, बुन्देलखण्ड, कन्नौज, अजमेर, मेवाड़।

३. सिंध पर अरबों का आक्रमण किस ढंग का था? उसके क्या परिणाम हुए?

भारतवर्ष का इतिहास

मध्य युग

महमूद ग़ज़नवी (९९७-१०३०)

सबुक्तगीन के धावे—सबुक्तगीन पहले गुलाम था, पर उसे अपने स्वामी अल्पतगीन से ग़ज़नी का राज्य मिल गया। उसने उत्तर-पश्चिम की ओर से भारत पर धावा किया और भटिंडा के राजा जयपाल को हराया। यह राजा पहली बार अकेला लड़ा, परन्तु बाद को वह उत्तर-भारत के अन्य बहुतसे राजपूत राजाओं का सहयोग लेकर उससे लड़ा। इस प्रकार भारत पर मुसलमान आक्रमणों का मार्ग साफ़ होगया। सबुक्तगीन के बाद इस समृद्ध देश को अपनी आकांक्षाओं का क्षेत्र बनानेवाला उसका पुत्र महमूद ग़ज़नवी था। उसने भारत पर सत्रह बार धावे किए और सिंध के इलाके से लेकर गंगा की वादी तक का सारा देश रौंद डाला। इन युद्धों के लिए उसके पास पहाड़ी इलाकों में रहनेवाले भयंकर हृष्ट-पुष्ट सैनिकों की कमी न थी। उसने अपनी योजनाएं बड़ी चतुरताके साथ निश्चित कीं। उसके हमले सदैव अचानक और ऐसे स्थानों पर होते थे जहाँ उसके टूट पड़ने की आशंका नहीं होती थी।

महमूद ग़ज़नवी के धावे—सन १००१ में उसकी जयपाल

से पेशावर के निकट मुठभेड़ हुई। उसने जयपाल को हराकर क़ैद कर लिया। उसके लड़के अनंगपाल ने धन देकर अपने पिता को छुड़ा लिया, पर वह स्वाभिमानी राजा इस हार और अपमान के क्षोभ से कभी न सँभल सका और जीते जी चिता में जल कर भस्म हो गया।

जयपाल की हार

तीन साल बाद महमूद ने भेरा पर चढ़ाई की। राजपूतों ने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए वीरता के साथ सामना किया। परन्तु वे आक्रमणकारियों की संख्या अधिक होने के कारण जीत न सके। दूसरे साल मुलतान का मुसल्मान शासक हराया गया।

भेरा पर चढ़ाई

अब हिंदुओं ने अपनी स्वतन्त्रता की रक्षा का प्रबल उद्योग किया और अनंगपाल की अधीनता में एक भारी दल एकत्र हुआ। बहुत से शक्तिशाली राजपूत राजाओं ने, जो इस युद्ध को धर्मयुद्ध समझते थे, अपनी अपनी सेनायें भेजीं। १००८ में घोर संग्राम हुआ। चारों ओर से होने वाले आक्रमणों से घबराकर महमूद हिन्दू सेनाओं के इस भयंकर प्रवाह का सामना न कर सका और उसे अपनी मोर्चेबन्दी के पीछे शरण लेनी पड़ी। इन खाइयों पर भी भयंकर गक्खरों ने प्रबल धावे किए और कुछ समय के लिए ऐसा दिखाई पड़ने लगा कि इस युद्ध में महमूद की सारी सेना नष्ट हो जायगी परन्तु लड़ाई के इस संगीन मौक़े पर अनंगपाल का हाथी बिगड़ा और पीछे को भाग निकला। उसकी सेना अब बिना नेता के रह गई और निराशा की हालत में तितर-बितर होकर पीछे को भागने लगी।

सङ्गठित मित्र दल

नगरकोट

इस विजय के बाद ही महमूद ने नगरकोट या कांगड़े

के प्रसिद्ध मन्दिर पर अधिकार किया जो अपनी विपुल धन-सम्पदा के लिए बड़ा मशहूर था। इस भयंकर हार के बाद हिंदुओं की ओर से, मिलकर लड़ने की, फिर कभी चेष्टा नहीं की गई।

महमूद ने काश्मीर पर भी धावा किया, पर उसे इसमें अधिक सफलता न हुई। उसने कन्नौज पर आक्रमण किया, जो देशभर में एक बहुत शक्तिशाली और सम्पन्न शहर था। राजा मुक़ाबला न कर सका और उसने आक्रमणकारी के साथ सुलह कर ली। इसके बाद मथुरा की बारी आई और उसके अनेक मन्दिर तथा भव्य-भवन नष्ट कर दिये गए। असंख्य लोगों को क़ैद करके दास बनाने के लिए ग़ज़नी ले जाया गया। एक दूसरे धावे के फलस्वरूप पंजाब को ग़ज़नी राज्य में मिला लिया गया और वहाँ एक मुसलमान सूबेदार नियुक्त कर दिया गया। मध्य-भारत का मज़बूत किला कालिंजर भी आक्रमणकारियों के हाथ में आ गया।

मथुरा पर धावा

सोमनाथ का मन्दिर—(१०२५)—महमूद का आखिरी और सब से बड़ा धावा काठियावाड़ के प्रसिद्ध मन्दिर सोमनाथ पर हुआ। यह भारत का सबसे प्रसिद्ध मन्दिर था और सब हिंदू इसे अत्यधिक भक्ति की दृष्टि से देखते थे। उसने मुलतान से होकर राजपूताने का रेगिस्तान पार किया और अजमेर पर धावा किया। पर बार बार कोशिश करने पर भी वह किले पर अधिकार न कर सका। अनहिलवाड़े के राजा ने उसका बिलकुल सामना नहीं किया और महमूद ग़ज़नवी की सेना सोमनाथ के मन्दिर के पास बेखटके जा पहुँची। यहाँ उसे राजपूत सेना से सामना करना पड़ा, जिस सेना ने अपने पूज्य मन्दिर की रक्षा करने में प्राण दे देने

का निश्चय कर रक्खा था। घोर युद्ध हुआ। राजपूत अपने शत्रु के धावे को तीन दिन तक रोकते रहे और जब अन्त में महमूद मन्दिर के द्वार में घुसा तो उसके वीर रक्षकों की लाशों पर पैर रखता हुआ अन्दर पहुँचा। मन्दिर के लिङ्गम् को नष्ट कर दिया गया और उसकी अतुल धन-राशि विजयी महमूद के हाथ लगी।

महमूद पर देश की सुन्दरता और समृद्धि का इतना असर पड़ा कि उसने अपनी राजधानी गुजरात में बनाने की बात सोची, पर उसे अपना यह विचार छोड़ना पड़ा क्योंकि अभी चारों तरफ़ के इलाकों पर पूरी तरह अधिकार नहीं हुआ था। एक लम्बी यात्रा के बाद, जिसमें उसकी सेना को प्यास और गरमी से बड़ा कष्ट सहना पड़ा, वह भारत के धन से लदा हुआ अपनी राजधानी में पहुँचा।

अन्य विजय

इन सफल धावों और पंजाब को अपने अधीन करने के अतिरिक्त उसने फ़ारस पर भी अधिकार कर लिया था और मध्य-एशिया के कई मशहूर राज्यों को तबाह कर डाला था। इसके बाद उसने सुल्तान की पदवी धारण की और यह उपाधि उसे बग़दाद के ख़लीफ़ा ने दी। वह अपने समय का सब से अधिक शक्तिशाली शासक था।

साहित्य और कला को आश्रय-प्रदान—कई बड़े बड़े योद्धाओं की तरह महमूद भी विद्वानों की संगति पसन्द करता था और उसने हर तरह के प्रसिद्ध विद्वानों को अपने आश्रय में एकत्र किया था। उसने वर्तमान फ़ारसी साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया। प्रसिद्ध कवि फ़िरदौसी ने अपना महाकाव्य शाहनामा इसी के लिए लिखा था। उसके आश्रय में प्रसिद्ध गणितज्ञ अलबिरूनी

ने भारतीय सभ्यता और धर्म का अच्छी तरह अध्ययन किया और बहुत-सी संस्कृत पुस्तकों का अनुवाद किया। अलबिरूनी ने भारत पर जो पुस्तक लिखी है, वह बड़ी विचारपूर्ण और बोध कराने वाली है।

महमूद ग़ज़नवी ने अपनी राजधानी की शोभा अनेक भव्य भवनों से, जिसमें मस्जिदें और शिक्षा-सम्बन्धी संस्थाएँ भी शामिल थीं, बढ़ाई।

उसका आचरण—महमूद एक महान् शासक, असाधारणतया कार्य्यक्षम तथा सुयोग्य सेनापति था। वह महान् विजेता था और उसने ग़ज़नी जैसे तुच्छ शहर को अपने विशाल साम्राज्य की राजधानी और मुस्लिम सभ्यता और विद्वत्ता का केन्द्र बना दिया था। वह न्यायशील और उदार शासक था। हां, शत्रुओं के साथ वह कठोरता से पेश आता था। वह १०३० ई० में मरा।

सारांश

मुसलमानों की प्रारम्भिक विजय—सबुक्तगीन ने ग़ज़नी का राज्य अपने स्वामी और श्वसुर अलप्तगीन से प्राप्त किया जो कि ग़ज़नवी वंश का बानी था। उसने दो बार भटियंडा के राजा जयपाल को लड़ाई में हराया उसके बेटे महमूद ने उसके काम को प्रारम्भ रक्खा और हिन्दुस्तान पर सत्रह आक्रमण किए जिनमें सबसे प्रसिद्ध ये हैं—

महमूद के हमले—(१) १००१ में उसने जयपाल को युद्ध में हराया लेकिन जयपाल इस अपमान को न सह सका और चिता में जलकर मर गया (२) तीन साल बाद उसने भेरा को भी जीत लिया (३) १००८ में हिन्दुओं ने अनङ्गपाल की अधीनता

में एक बहुत बड़ी सेना एकत्रित की और घमासान लड़ाई हुई, लेकिन सौभाग्य से महमूद की ही विजय हुई (४) अगला आक्रमण मथुरा और कन्नौज पर किया और उन्हें हराया (५) १०२१ में पञ्जाब को जीतकर अपने राज्य में मिला लिया। महमूद का सबसे अन्तिम और सबसे ज़बरदस्त धावा सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ जहां उसने असंख्य रत्नों और बड़े बड़े ख़ज़ानों पर अधिपत्य कर लिया।

महमूद की विद्वत्ता और कला-परिचय—महमूद विद्या और कला में बड़ा निपुण था वह विद्वानों और कलाविदों की संगति पसन्द करता था। फ़ारसी-साहित्य को बड़ा प्रोत्साहन दिया। फ़िरदौसी ने अपना महाकाव्य "शाहनामा" इसी के लिए लिखा था। अलबिरूनी भी इसके दरबार में रहता था।

प्रश्न

१. महमूद ग़ज़नवी के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण लिखो। उनका क्या प्रभाव पड़ा ?

२. महमूद के आचरण पर एक नोट लिखो।

३. फ़िरदौसी और अलबिरूनी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

उत्तरी-भारत पर मुसल्मानों की विजय

मुहम्मद ग़ोरी—ग़ज़नी का महमूद भारत को हमेशा के लिए अपने अधिकार में रखने का इच्छुक नहीं था। वह केवल पंजाब पर ही अपना राज्य कायम कर सन्तुष्ट हो गया। हम उसे यथार्थ रूप से भारत का बादशाह नहीं कह सकते। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि महमूद अपने बाद के मुसल्मान आक्रमणकारियों के लिए मार्ग तैयार कर दिया। उसका विशाल साम्राज्य और अतुल धनराशि उसके अयोग्य उत्तराधिकारियों के हाथों में पहुँची, जो ११९८ में अपनी राजधानी से निकाले जाकर, अपनी लाहौर की रियासत में शरण लेने को बाध्य हुए।

ग़ज़नवियों का हाल

उत्तरी-भारत की वास्तविक विजय बारहवीं शताब्दी के अन्त से आरम्भ हुई। उस समय मुहम्मद ग़ोरी नामक एक योग्य और अनुभवी योद्धा ने ग़ोर में अपने भाई से ग़ज़नी की गद्दी पाकर भारत की सीमा की ओर पैर बढ़ाया।

मुहम्मद ग़ोरी ने भारत पर ११७५ से धावा करना आरम्भ

किया। उसने मुलतान और सिन्ध पर अधिकार कर लिया और फिर गुजरात के राजा पर आक्रमण किया, पर इस युद्ध में उसे मुँह की खानी पड़ी और उसे बड़ी भारी क्षति के साथ वापस लौटना पड़ा। कुछ सालों के बाद उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया और महमूद ग़ज़नवी के अन्तिम वंशज को गद्दी से उतार दिया। इस प्रकार वह उत्तरी-भारत के केन्द्र पर आक्रमण करने में समर्थ हो गया।

मुहम्मद गोरी के हमले

तराइन की पहली लड़ाई (११९१)—अब राजपूत राजाओं की आंखें खुलीं। पर सदा की भांति उस समय भी उनमें फूट पड़ गई। कन्नौज और दिल्ली के राजवंशों में घातक कलह उत्पन्न हो गया जो जयचन्द की पुत्री संयोगिता के हरण के कारण और भी भड़क उठा। सम्भव है कि जयचन्द पर लगाया गया यह आरोप पूर्णांश में सत्य न हो कि उसने गोरी को आक्रमण के लिए आमन्त्रित किया, पर इसमें किसी प्रकार का संदेह नहीं किया जा सकता कि इन दो राजपूत महाशक्तियों की आपस की फूट ही उनके विनाश का प्रधान कारण बनी।

जब ११९१ में गोरी दिल्ली की तरफ़ बढ़ा तो थानेश्वर के ऐतिहासिक क्षेत्र के निकट तराइन (त्राओरी) नामक स्थान पर अजमेर और दिल्ली के राजपूत राजा पृथ्वीराज चौहान के अधीन राजपूतों की बड़ी भारी सम्मिलित शक्ति ने उसका मुकाबला किया। जयचन्द और उसके संगी साथी अलग रहे। राजपूत और मुसलमान सेनाओं का यह पहला घोर संघर्ष था। मुसलमानों की घुड़सवार सेना ने राजपूत सेना के मध्य भाग को तोड़ने की चेष्टा की, पर वह सफल न हो सकी। इधर पृथ्वीराज ने शत्रु की सेना को

पीछे की ओर से घेर लिया। ग़ोरी की पूरी हार हुई और उसे अनेक घाव भी लगे। परन्तु हिन्दुओं ने उनका बहुत दूर तक पीछा नहीं किया और ग़ोरी को ग़ज़नी वापस जाने दिया।

तराइन की दूसरी लड़ाई (११९२)—इस पराजय से गोरी को ग्लानि के मारे चैन न पड़ता था। उसने इस कलंक को धोने के लिए १,२०,००० मजबूत घुड़सवारों की सेना बनाई। इस बार भी युद्ध-स्थल वही था, पर परिणाम पहले जैसा न रहा। दिनभर के घोर युद्ध के बाद भी राजपूत अपनी जगह पर डटे रहे और शत्रु उनकी पंक्तियां न तोड़ सके। अब गोरी ने एक चाल चली। उसने भाग चलने का बहाना बनाया। राजपूत इस चाल में पूरी तरह फँस गए और अपनी जगह छोड़ कर शत्रु सेना का पीछा करने के लिए उस पर टूट पड़े। इस अवसर पर मुहम्मद गोरी ने १०,००० नवीन अश्वारोही तीरन्दाजों के साथ राजपूत सेना पर भीषण आक्रमण किया। हिन्दू सेना एक बड़े मकान की तरह, जिसकी नीवें एक बार हिल गई हों, विनष्ट हो गई। यह हार कुछ साधारण न थी। अधिकांश सेना-नायक युद्ध में काम आ चुके थे। पृथ्वीराज को पकड़ कर मार डाला गया। दिल्ली और अजमेर पर अधिकार हो गया। इस युद्ध से हिन्दुस्तान पर मुसलमानों के आक्रमणों का मार्ग सदैव के लिए साफ़ हो गया।

ग़ोरी की विजय

अन्य राज्यों पर अधिकार—दूसरे साल कन्नौज के राजा को भी अपने विजातीय शत्रु के साथ पृथ्वीराज के युद्ध के समय उदासीन बने रहनेका फल मिला। जयचन्द की हार हुई और वह मार डाला गया। कन्नौज

कन्नौज और बनारस

और बनारस मुसलमानों के अधिकार में आ गए। भारत के इन नये विजेताओं के हाथों बनारस के ब्राह्मणों और बिहार के बौद्ध भिक्षुओं को बड़ा कष्ट सहना पड़ा। बौद्ध-विहार नष्ट कर दिए गए और बौद्ध धर्म जो, पहले से ही मृतप्राय हो चला था, इस आघात से भारत से सदैव के लिए लुप्त हो गया।

गोरी ने कुतुबुद्दीन नामक अपने सुयोग्य गुलाम को भारत का शासक नियुक्त किया जिसने अपने स्वामी का विजय कार्य्य उसी उत्साह और शक्ति के साथ जारी रक्खा। उसने कालिंजर का मज़बूत किला फ़तह किया जिससे उसका बुन्देलखण्ड पर अधिकार हो गया। उसने गुजरात के राजा को भी पराजित किया।

कालिंजर

बंगाल और बिहार पर मुसलमानों का अधिकार बिल्कुल भिन्न और आश्चर्य्यजनक प्रकार से हुआ। मुहम्मद बख़्तियार खिलजी नामक एक साहसी सेना-नायक ने इन दोनों प्रान्तों पर बिना किसी विरोध के अधिकार कर लिया। बंगाल का वृद्ध राजा अपने नदिया के महल में घिर गया और वहाँ से बड़ी कठिनता से अपने प्राणों को लेकर भाग निकला।

बंगाल और बिहार

राजपूतों का अन्य प्रदेशों में जाकर बसना— इस प्रकार हिन्दुस्तान के सम्पन्न प्रान्तों पर पन्द्रह वर्षों के अल्प काल में मुसलमानों का अधिकार हो गया और राजपूत शक्ति बिल्कुल छिन्न भिन्न हो गई। मुहम्मद गोरी और उसके सेना-नायकों ने उत्तरी-भारत के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार कर लिया था। आख़िरकार राजपूत गुजरात में, चित्तौर के अभेद्य

किले में और राजपूताने के रेतीले भागों में चले गए। जयचन्द के पोते ने आत्म समर्पण करना स्वीकार नहीं किया और वह अपनी प्रजा के साथ राजपूताने के मारवाड़ प्रांत में जोधपुर नामक राज्य की नींव डाल कर राज्य करने लगा। यह राज्य अभी तक चला आ रहा है।

सन १२०६ में गक्खरों के भीषण दल ने मुहम्मद गोरी की हत्या कर डाली। अब उसकी जगह भारत का शासक उसका प्रतिनिधि कुतुबुद्दीन हुआ।

गोरी की मृत्यु

मुसल्मानों की विजय के कारण—सरसरी निगाह से देखने पर यह एक विलक्षण-सी बात जान पड़ेगी कि मुसल्मान सारे उत्तरी-भारत पर थोड़े से ही समय में—जब कि राजपूतों जैसी वीर जाति उस पर शासन करती थी—अधिकार करने में सफल हो गये; पर अपने प्रदेशों की रक्षा में राजपूतों की असफलता के कारणों को समझना कठिन नहीं। वे कारण नीचे दिये जाते हैं।

अफ़ग़ानिस्तान एक ऐसा सुरक्षित स्थान था जहाँ से निकल कर मुसल्मान बड़ी आसानी से भारत पर आक्रमण कर सकते थे और हार जाने पर भाग कर वहां शरण ले सकते थे। इसके विपरीत हिन्दू अपने प्राकृतिक सीमाप्रान्त को खो चुके थे और उन्हें केवल आत्म-रक्षा के लिए ही युद्ध करना पड़ता था।

मुसल्मानों का प्रबल आधार-स्थल

इसके अतिरिक्त हिन्दुओं में युद्ध-कला की भी कमी थी, यद्यपि व्यक्तिगत वीरता में वे किसी से हीन नहीं थे। उनके घोड़े छोटी नस्ल के थे। उन्हें केवल अपने हाथियों की शक्ति पर भरोसा था; पर उन हाथियों को शत्रुओं की तेज़ घुड़-

हिन्दुओं में युद्ध-कौशल की कमी

सवार सेना आसानी से भगा देती थी। मुसल्मान बहुत काल से पहाड़ी इलाकों में रहते आए थे; इसलिए वे स्वभावतया ही अधिक बलवान् थे। इधर ये लोग गंगा की हरी-भरी भूमि और दुर्बल करने वाले जलवायु में रहने के कारण कमज़ोर थे।

साथ ही साथ मुसलमान एक प्रबल धर्मिक जोश से एकता के सूत्र में बँधे हुए थे। इधर हिन्दू लोग जातिपांति के भेद-भाव से विभक्त होने के कारण कभी एक होकर शत्रु का सामना नहीं कर सके। मुसलमान एक सेना-नायक के अधीन होकर लड़ना जानते थे और राजपूतों को एक योग्य सेनापति के नीचे काम करने का अभ्यास नहीं था। प्रत्येक छोटी रियासतों के सिपाही केवल अपने नायक की ही आज्ञा को मानते थे।

इसके अलावा मुसल्मानों में युद्ध के समय यह भावना काम करती थी कि या तो जीत के छोड़ेंगे या मर मिटेंगे। अपने देश से बहुत दूर होने के कारण वे अपने शत्रुओं की अपेक्षा अधिक उत्साह और मनोयोग के साथ लड़ते थे।

मुसलमानों की सफलता का उत्तरदायित्व राजपूतों के परस्पर के भेद-भाव पर भी कुछ साधारण मात्रा में नहीं था। उदाहरण के लिए जब पृथ्वीराज की पराजय हुई तो जयचन्द उपेक्षा—और शायद सन्तोष के साथ—चुपचाप देखता रहा और जब उसके पतन की बारी आई तो चन्देला वंश के शक्तिशाली राजाओं ने अपना हाथ तक न उठाया।

अन्त में इन विजेताओं ने सफलता प्राप्त करके बड़ी कठोरता के साथ राज्य करना आरम्भ किया और कड़े उपायों से विद्रोह को दबाये रक्खा।

सारांश

उत्तरी भारत पर मुसलमानों की विजय

मुहम्मद ग़ोरी की विजय—महमूद ग़ज़नवी हिन्दुस्तान को हमेशा अपने अधिपत्य में नहीं रखना चाहता था इसलिए उत्तरी भारतवर्ष में मुसलमानों की असली विजय का प्रारम्भ मुहम्मद ग़ोरी से शुरू होता है। उसने मुलतान तथा सिन्ध को विजय किया और गुजरात के राजा पर धावा किया, जहां उसकी हार हुई और उसे बड़ी भारी क्षति के साथ वापस लौटना पड़ा। ११९१ में मुहम्मद ग़ोरी ने दिल्ली पर चढ़ाई की और तराइन नामक प्रसिद्ध स्थान पर उसका पृथ्वीराज चौहान से बड़ा भारी युद्ध हुआ, जहां ग़ोरी की हार हुई। यह तराइन की पहली लड़ाई कहलाती है। दूसरे वर्ष फिर उसने चढ़ाई की। इस बार राजपूत हार गए और पृथ्वीराज को पकड़कर मार डाला गया। यह तराइन की दूसरी लड़ाई से मशहूर है। इसके बाद कन्नौज पर विजय प्राप्त की और जयचंद को क़त्ल कर दिया। कालिंजर पर क़ुतुबुद्दीन ऐबक ने अधिकार कर लिया। बंगाल और बिहार को बख़्तियार खिलजी ने जीत लिया।

मुसल्मानों की विजय के कारण—फ़ौज़ी—(१) आक्रमणकारियों के पास अफ़ग़ानिस्तान जैसा सुरक्षित और मज़बूत स्थान था, (२) हिन्दू लोग केवल अपनी रक्षा के लिए लड़ते थे, (३) वह मुसल्मानों से युद्ध-कौशल में कम थे, (४) मुसल्मान लोग हूणों की तरह पहाड़ी प्रदेशों की नई कौम होने के कारण स्वाभाविकरूप से बहुत अधिक हृष्ट-पुष्ट थे और (५) उस समय देश छोटी-छोटी रियासतों में विभक्त था। ये राज्य एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ते रहते थे।

अन्य कारण—(१) मुसल्मानों में जातीय जोश बहुत था, इसके

विपरीत जातिपांति के कारण हिन्दुओं में एक-दूसरे के विरुद्ध बहुत से दल बन गए थे, (२) मुसलमान जो बहुत दूर-दूर के देशों से आए थे, इस विचार को दिमाग़ में रखकर लड़ते थे कि या तो विजयी होंगे या मैदान में लड़ते लड़ते मर जाएँगे, (३) बौद्ध मत के अहिंसा के प्रचार ने जनसंख्या के अधिक भाग को लड़ने से बेकार कर दिया। जब मुसलमान सफलता प्राप्त कर चुकते थे तो बड़ी कठोरता के साथ राज्य करते थे।

प्रश्न

१. मुहम्मद ग़ोरी की विजय का वृत्तान्त संक्षेप में लिखो और सिद्ध करो कि महमूद ग़ज़नवी ने नहीं किन्तु मुहम्मद ग़ोरी ने उत्तरी-भारत में मुसलमानी राज्य की नींव डाली।

२. राजपूत बड़े लड़ाके थे;—फिर वे मुसलमान आक्रमणकारियों को क्यों न रोक सके?—कारण लिखो।

३. पृथ्वीराज, जयचन्द, तराइन की पहली लड़ाई और तराइन की दूसरी लड़ाई पर छोटे छोटे नोट लिखो।

दिल्ली की सुल्तानशाही (१२०६–१५२६)

गुलाम वंश (१२०६–१२९०)

कुतबुद्दीन—(१२०६–१२१०) जब १२०६ में मुहम्मद ग़ोरी मारा गया तो कुतबुद्दीन ऐबक दिल्ली का स्वतन्त्र सुल्तान बन बैठा और "ग़ुलाम वंश" का प्रवर्तक हुआ। यह वंश लगभग एक शताब्दी तक कायम रहा। अपने चार वर्ष के छोटे से शासन काल में उसने अपने को योग्य और वीर शासक साबित कर दिखाया। दिल्ली की सुन्दर मस्जिद उसकी विशाल योजनाओं की गवाही देती है। साथ ही उससे हिन्दू वास्तु-कलाविदों की भी निपुणता प्रकट होती है।

अल्तुमिश—(१२११–१२३६)—कुतबुद्दीन की मृत्यु के कुछ काल बाद उसका गुलाम अल्तुमिश गद्दी पर बैठा। इस नवीन शासक का अधिकांश समय बङ्गाल, सिन्ध और पंजाब के मुसलमान-प्रतिद्वन्द्वी शासकों के साथ युद्ध करने में बीता। सन १२२८ तक उसने सब को अपने वश में कर लिया। इसके बाद उसने अपनी दृष्टि राजपूताने की ओर फेरी जिसकी विजय में उसके छः

वर्ष से अधिक व्यतीत हो गए। मालवा के राजपूतों ने बड़ी वीरता के साथ सामना किया, पर मालवा प्रदेश की कुंजी—रणथम्भोर का क़िला—अन्त में मुसल्मानों के हाथ में चला गया। इसके बाद मांडू, ग्वालियर और उज्जैन भी ले लिए गए।

अल्तुमिश ने कुतब मीनार को, जो कुछ ऐतिहासिकों के कथनानुसार एक मुसल्मान फ़क़ीर की यादगार में तय्यार कराई गई थी, पूरा करवाया। इन्हीं दिनों भारत पर चगेज़खां और उसके असभ्य परंतु निडर मङ्गोलों के आक्रमण का ज़बरदस्त खतरा था। सौभाग्य से भारत को वह दुर्दिन न देखना पड़ा।

चगेज़ खां

रज़िया बेगम (१२३६–१२३९)—अल्तुमिश की मृत्यु के कुछ महीने बाद दिल्ली की गद्दी पर उसकी पुत्री रज़िया बेगम बैठी। इस स्त्री में विलक्षण बुद्धि और साहस था। अपने पिता के राज्य-काल में, जब अल्तुमिश को युद्धों के लिए दूर देशों में जाना पड़ता था, इसने कई बार उसके स्थान में राज्यकार्य सम्भाला था। दिल्ली की गद्दी पर बैठने वाली यही एक स्त्री साम्राज्ञी हुई है। वह मर्दाना कपड़े पहन कर और हाथी पर बैठ कर स्वयं सैन्य-सञ्चालन करती थी।

रज़िया ने अबीसीनिया के एक दास को अपना कृपा-पात्र बनाया। इससे उसके अमीर उमराओं का क्रोध भड़क उठा और वे उसके विरुद्ध विद्रोह करने पर उतारू हो गए। इस पर रज़िया ने उनमें से एक के साथ विवाह करके विद्रोह शान्त करने की चेष्टा की, पर वह तीन साल के अल्प, पर अशांतिपूर्ण, शासन के बाद अन्त में मार डाली गई।

सुल्तान बल्बन (१२६६–१२८७)—इस वंश में पांच

शासक और हुए, परन्तु उनमें से केवल एक का उल्लेख करना पर्याप्त होगा—वह शासक बल्बन था। यह बड़ा कठोर और योग्य शासक था। अपने विनम्र और धार्मिक पूर्ववर्ती शासक नासिरुद्दीन के दीर्घ शासन-काल में भी यही असली शासक था।

इसी समय मंगोलों ने उत्तर पश्चिम भारत पर घोर आक्रमण करने आरम्भ कर दिए; परन्तु बल्बन ने पंजाब में अनेक मज़बूत किलों की एक शृंखला बना दी, जिससे मंगोलों की गति रुक गई। बल्बन ने राजपूत राजाओं के विद्रोह को, जो अब अपनी खोई हुई शक्ति को कुछ प्राप्त करने लगे थे, शान्त किया।

मंगोल आक्रमण

अपने स्वामी की मृत्यु के बाद बल्बन को राज्य पर अधिकार करने में कोई असुविधा नहीं हुई। अपने शासन-काल में वह तेजस्वी, पर निष्ठुर और निर्दय रहा। उत्तर पश्चिम सीमा पर अनेक दुर्ग बनाए गए और उनमें शक्तिशालिनी और विश्वास-पात्र सेनाएं रक्खी गईं। इसके शासन-काल में बंगाल में विद्रोह हुआ। जिसे कुछ कठिनाइ के साथ दबा दिया गया।

बल्बन का दरबार भीषण मंगोलों के अत्याचारों से पीड़ित एशिया के राजाओं और विद्वानों का आश्रयस्थल था। इनमें सब से अधिक उल्लेखनीय अमीर खुसरो है जिसकी कविताएं अब भी उत्तरी-भारत के जनसाधारण में खूब प्रचलित हैं। १२८६ में बल्बन का सबसे बड़ा और प्यारा लड़का महमूद मंगोल आक्रमण को रोकते हुए मारा गया। बल्बन इस आघात को सहन न कर सका और "यह दारुण वृद्ध अत्याचारी जो कभी हंसा नहीं" १२८७ में अस्सी वर्ष की आयु में मर गया।

अमीर खुसरो

इस प्रबल शासन के बाद यह राज्य उसके शक्तिहीन और

विलासी उत्तराधिकारियों के हाथों में पहुँचा, जिसके अन्तिम गुलाम को १२६० में उसके सेनापति ने गद्दी से उतार दिया। अब दिल्ली की गद्दी जलालुद्दीन नामक खिलजी वंश के एक सेनानायक के अधिकार में आई।

सारांश

दिल्ली के बादशाह

गुलामवंश

(१) कुतबुद्दीन ऐबक (१२०६–१२१०)—कुतबुद्दीन ऐबक गुलाम वंश का पहला बादशाह था। उसने मुहम्मद गोरी के समय में प्रसिद्धि पाई थी। कुतुब मीनार की नींव रक्खी।

(२) अल्तुमिश (१२११–१२३६)—अल्तुमिश का राज्य बहुत बड़ा था। उसने बंगाल, सिन्ध, पंजाब, रणथम्भोर, मांडो और ग्वालियर को विजय किया।

(३) रज़िया बेगम (१२३६–१२३९)—अल्तुमिश की मृत्यु के बाद उसकी पुत्री रज़िया बेगम गद्दी पर बैठी। इस स्त्री में विलक्षण बुद्धि और अपार साहस था। उसके अमीरों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया और वह मार डाली गई।

बल्बन (१२६६–१२८७)—यह नासिरुद्दीन का मन्त्री था, लेकिन नासिरुद्दीन के शासन काल में भी यही असली शासक था। इस समय में उसने मंगोलों और राजपूतों के विद्रोह को शांत किया। १२६६ में वह स्वयं शासक बन बैठा। यह बड़ा कठोर और निर्दय था। १२८६ में इसका सब से बड़ा पुत्र मारा गया। बलबन इस आघात को

सहन न कर सका और इसी से इसकी मृत्यु हो गई। इसके उत्तराधिकारी बहुत कमजोर और अयोग्य थे।

प्रश्न

१. गुलाम वंश का प्रवर्तक कौन था? उसके कार्यों का संक्षिप्त विवरण दो।

२. उत्तर-पश्चिम की ओर से मंगोलों के आक्रमण रोकने का बलबन ने क्या उपाय किया था?

३. कुतब मीनार, अलतुमिश, रज़िया बेगम और अमीर खुसरो पर संक्षिप्त नोट लिखो।

खिलजी वंश [१२६०—१३२०]

दक्षिण पर पहला मुस्लिम धावा—जलालुद्दीन एक पुराना और प्रसिद्ध योद्धा था। अगर उसमें कोई दोष था तो यही कि वह नर्म दिल का था। वह अपने भतीजे अलाउद्दीन पर अत्यधिक विश्वास रखता था। अलाउद्दीन एक साहसी और आदर्शहीन युवक था। उसकी बड़ी अभिलाषाएँ थीं। कुछ चुने हुए घुड़सवारों की सेना लेकर उसने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उस समय तक उधर कोई मुसलमान आक्रमणकारी नहीं गया था। उसने यह मशहूर कर दिया कि वह किसी दक्षिणी राजा के यहां नौकरी प्राप्त करने की फिक्र में है, क्योंकि वह अपने चचा के व्यवहार से बिल्कुल सन्तुष्ट नहीं है। अकस्मात उसने देवगिरि पर धावा बोल दिया और वहां के विस्मय-चकित राजा को पराजित होना पड़ा। इस प्रकार यह युवक विजेता लूट के माल से लदा हुआ दिल्ली आ पहुँचा। इस विजय से उसकी वीरता और साहस की धाक जम गई। वापस आने पर उसने अपने सरल-हृदय चचा की हत्या कर डाली और उसने बाल बच्चों को भी

एक एक करके मौत के घाट उतार दिया और जी खोलकर धन देने से सारी विरोधी शक्तियों को दबाकर गद्दी पर अधिकार कर लिया।

अलाउद्दीन—(१२९६–१३१५) अलाउद्दीन उत्तरी-भारत का अत्यन्त प्रबल शासक हुआ है। उसने अपने बीस वर्ष के दीर्घ शासन-काल में अपने राज्य की सीमा के विस्तार का कार्य्य बराबर जारी रक्खा। १२९७ में गुजरात पर अधिकार हो गया। रानी कमलादेवी जो "सुन्दरता, बुद्धि और गुणों में भारत की शोभा थी" अलाउद्दीन के रनवास में लेजाई गई। रणथम्भोर और चित्तौर के प्रसिद्ध दुर्ग लम्बे घेरों के बाद अलाउद्दीन के अधिकार में आ गए। चित्तौर पर रानी पद्मिनी के लिए घेरा डाला गया था। बची-खुची सेना ने विवश होकर क़िले के दरवाज़े खोल दिए और एक साथ बाहर निकलकर शत्रुओं की अपार सेना को काटते हुए प्राण दे दिए। उनकी स्त्रियों ने जीते जी अग्नि में प्राणों की आहुति देकर अपने सतीत्व की रक्षा की।

विजय

गुजरात, रणथम्भोर और चित्तौर

उसके शासन के प्रारम्भिक काल में २,००,००० मंगोलों (जो बाद को मुगल कहलाए) का सैन्य-दल यमुना तक बढ़ आया। अलाउद्दीन ने धैर्यपूर्वक उनका सामना किया और उन्हें बुरी तरह हराया। मंगोलों का खतरा संगीन और अटूट था। सुल्तान ने उत्तर-पश्चिम सीमा पर सेना नियुक्त करने की बल्बन वाली नीति को अपनाया और इस प्रकार उसकी ४,७५,००० घुड़सवार सेना ने पांच या छः आक्रमणों को निष्फल कर दिया।

मंगोल

अब मंगोल आक्रमण का भय जाता रहा था। अलाउद्दीन

का सिक्का सारे उत्तरी-भारत में पूरी तरह बैठ गया था। अतः उसका ध्यान अब दक्षिण और उसकी अतुल धनराशि की ओर आकर्षित हुआ। उसने मलिक काफ़ूर नामक एक प्रसिद्ध धर्मच्युत हिन्दू सेनापति की अधीनता में एक विशाल सेना भेजी।

मलिक काफ़ूर से वारङ्गल और द्वार समुद्र का लिया जाना।

महाराष्ट्र, वारङ्गल और द्वारसमुद्र पर लगातार हमले किए गए—उधर इन प्रदेशों में आन्तरिक कलह निरन्तर जारी था—और इस प्रकार दक्षिण के अधिकांश भाग—मदुरा तक धावे बोले गए। मलिक काफ़ूर चार वर्ष बाद सोने और हीरे मोतियों से लदा हुआ वापस आया। साथ में वह द्वारसमुद्र के होयसाल राजा को भी बन्दी करके लाया था। उसका उद्देश दक्षिण पर सदैव के लिए अधिकार करने का नहीं था।

अलाउद्दीन की अन्तर्नीति—अपनी विशाल सेना के निर्वाह के लिए अलाउद्दीन को धन की बड़ी आवश्यकता रहती थी, जिसे वह अपनी प्रजा से तरह तरह के बहाने बना कर प्राप्त करता था। जो कुछ उपज होती, उसका आधा राज-कर के रूप में चला जाता और आए दिन अन्य अनेक कर लगाए जाते। वह अपनी हिन्दू-प्रजा के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार करता था वह उनसे यथा-सम्भव धन खींचने के लिए अनेक नियम और विधान बनाया करता था, जिससे वह अपनी सेना को युद्ध के योग्य बनाए रख सके।

अपने दरबारियों की शक्ति परिमित रखने के लिए उसने शराब पीने की मनाही करदी और आज्ञा करदी कि कोइ सामाजिक उत्सव बिना उनकी अनुमति के न हो। उनके ऊपर विश्वस्त गुप्तचरों की कड़ी निगाह रहती थी।

गुप्तचर

राज्य के नाम पर अनेक जागीरें और उपाधियां जब्त कर ली गईं थीं। व्यापार सुव्यवस्थित था और वस्तुओं के मूल्य नियत थे। अनाज के लिए बड़े बड़े गोदाम तय्यार किए गए थे। सेना का प्रबन्ध बड़ा अच्छा था।

व्यापार की व्यवस्था।

उसका चरित्र—जब उसने लगभग सारे भारत पर अधिकार कर लिया तो वह संसार विजय के स्वप्न देखने लगा, पर असंयत जीवन और बुढ़ापे के कारण उसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और वह १३१५में मर गया।

अनेक दोष रहने पर भी यह अनपढ़ और आदर्शहीन सुल्तान एक महान् विजेता और शक्तिशाली शासक था। उसे अपने सारे जीवन में लगातार सफलतायें ही नसीब हुईं। उसके सारे निर्दयता-पूर्ण कार्य्यों में भी बुद्धिमता का एक अजीब गुण दिखाई देता था। वह अपना प्रधान मन्त्री स्वयं ही था और राज-कार्य के विषय में शायद ही कभी किसी से परामर्श लेता हो। उसकी राजनीति स्वयं उसी के शब्दों में इस प्रकार व्यक्त की जा सकती है—"मैं यह नहीं जानता कि शरीयत के अनुकूल क्या है और उसके विरुद्ध क्या है। जो कुछ मुझे अपने राज्य के लिए अच्छा मालूम पड़ता है, या जिसे मैं परिस्थिति के अनुसार उचित समझता हूँ, वही करता हूँ।"

शक्तिहीन उत्तराधिकारी—अलाउद्दीन के तेजस्वी शासन के बाद उसके तीन वंशज गद्दी पर बैठे, जो शक्तिहीन और विलासी थे। वे केवल पाँच वर्ष शासन कर सके। इस थोड़े से समय में भी अनेक षड्यन्त्र रचे गए और हत्याएं होती रहीं। अन्त में १३२० में पंजाब के सूबेदार गयासुद्दीन तुग़लक ने राजधानी पर धावा किया और एक नए वंश की स्थापना की

सारांश

खिलजी वंश

(१) जलालुद्दीन खिलजी—१२९० में शासक बना। यह बड़ा नर्म दिल का था और अपने भतीजे अलाउद्दीन पर बड़ा विश्वास करता था। अलाउद्दीन ने दक्षिण पर आक्रमण किया और उसे विजय कर लिया। राजधानी में लौट कर उसने अपने चचा को मार डाला।

(२) अलाउद्दीन खिलजी—(१२९६-१३१५) अलाउद्दीन एक बड़े प्रदेश का शासक था। इसने गुजरात, रणथम्भोर और चित्तौड़ को विजय किया तथा मंगोलों पर भी विजय प्राप्त की। इसने अपने सेनापति मलिक का.फूर की अध्यक्षता में एक विशाल सेना दक्षिण को भेजी, जिसने वारंगल और द्वारसमुद्र को विजय किया।

इसकी अन्तर्नीति—इसे दो विद्रोहों को नष्ट करना था। पहला मंगोलों का और दूसरा अपने अमीरों के विद्रोह का। इसलिए उसने अधिक "कर" लगाकर विशाल सेना एकत्रित की। अमीरों के विद्रोह से सचेत रहने के लिए इसने गुप्तचर नियत किए थे। व्यापार सुव्यवस्थित था और वस्तुओं का मूल्य वह स्वयं नियत करता था। शराब पीने की मनाही थी। १३१५ में इसकी मृत्यु हो गई। अलाउद्दीन के उत्तराधिकारी शक्तिहीन और अयोग्य थे। इसलिए १३२० में गयासुद्दीन शासक बन बैठा।

प्रश्न

१. अलाउद्दीन के दक्षिण के धावों का विवरण लिखो।

२. अलाउद्दीन की अन्तर्नीति क्या थी और उसकी सहायता से वह अपने प्रबल शासन को बनाये रखने में कहाँ तक समर्थ हुआ?

३. मलिक काफ़ूर और कमलादेवी पर छोटे छोटे नोट लिखो।

तुग़लक वंश (१३२०-१३८८)

ग़यासुद्दीन (१३२०-१३२५)—ग़यासुद्दीन जाट वंश की हिन्दू माता और तुर्की गुलाम से उत्पन्न हुआ था। वह सुयोग्य शासक हुआ है। उसने दिल्ली के निकट तुग़लकाबाद नामक एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया, सीमांत प्रदेश पर सेना नियत की और दक्षिण तथा बंगाल का विद्रोह दमन किया। १३२५ में लकड़ी का एक मकान उस पर गिर पड़ा और वह मर गया।

मुहम्मद तुग़लक (१३२५-१३५१)—यह नवीन शासक बड़ा विचक्षण विद्वान था। उसे अपनी योग्यताओं पर गर्व था और वह धार्मिक नियमों का बड़ी सावधानी के साथ पालन करता था। उसके विचार मौलिक थे

चरित्र

और अपनी प्रजा के मंगल के लिए वह अनेक युक्तियां ढूंढ़ निकालता था पर वह वहमी था और उसमें व्यवहारिक बुद्धि और चतुरता नहीं थी। उसकी सब योजनाएं उसकी प्रजा की भलाई करने में निरर्थक सिद्ध होती थीं। वास्तव में उनसे प्रजा पर अनेक विपत्तियां आपड़ती थीं। इस कारण वह बदनाम

हो गया और धीरे धीरे उसका साम्राज्य क्षीण हो चला।

उसने उत्तर-पूर्व में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। दक्षिण में उसकी नीति अलाउद्दीन की नीति से सर्वथा भिन्न थी, क्योंकि वह इस प्रदेश पर स्थायी विजय प्राप्त करना चाहता था। उसका साम्राज्य भारत के अन्य किसी भी मुसलमान शासक के साम्राज्य से बड़ा था और इसी कारण उसमें उसके विनाश के बीज भी थे।

विजय

उसकी निष्फल योजनाएँ—मुहम्मद तुग़लक को दिल्ली से बैठकर दक्षिण जैसे सुदूर प्रदेश पर शासन करने में असुविधा प्रतीत होती थी। इस दृष्टि से देवगिरि दिल्ली की अपेक्षा अधिक अच्छी राजधानी बन सकती थी। अतः उसने उसका नाम दौलताबाद रख कर उसे अपनी राजधानी बनाने का निश्चय कर लिया। योजना अच्छी थी, पर प्रबन्ध इतना भद्दा था कि प्रजा को बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। दिल्ली की प्रजा को दौलताबाद को जाने की आज्ञा हुई। यात्रा बहुत लम्बी और थकानेवाली थी, अतः मार्ग में हज़ारों आदमी मर गए।

१. राजधानी-परिवर्तन

इसी समय मंगोलों ने पंजाब पर एक बार फिर आक्रमण किया और बादशाह ने युद्ध करने के बजाय उन्हें धन देकर लौटा दिया, इसका स्वाभाविक फल यह हुआ कि उन्हें नए सिरे से आक्रमण करने का प्रोत्साहन मिला।

२. मंगोलों को रिश्वत

मुहम्मद तुग़लक ने फ़ारस पर आक्रमण करने के लिए

३. फ़ारस और चीन विजय करने की योजना

३,७०,००० घुड़सवार सेना एकत्र की और फिर धनाभाव के कारण सेना को बर्खास्त कर दिया। उसने दूसरी मूर्खता यह की कि १,००,००० सेना चीन विजय करने को भेजी, जो हिमालय के बर्फ़ में नष्ट हो गई।

इन अविवेकपूर्ण योजनाओं से बादशाह का कोष खाली हो गया। अब उसने कोष भरने के लिए तांबे का दर्शनी सिक्का चलाया, जो चांदी के सिक्के की जगह काम देने वाला था। पर इससे नकली सिक्कों का रोकना असम्भव हो गया—घर घर टकसालें खुल गईं। अन्त में उसे विवश होकर अपना नया सिक्का पूरे मूल्य पर वापस लेना पड़ा और इस प्रयोग से उसे बड़ी आर्थिक हानि उठानी पड़ी।

४. दर्शनी सिक्का

अब मुहम्मद तुग़लक ने अपनी क्षति की पूर्ति के लिए नए और भारी कर लगाने आरम्भ किए जिन्हें बड़ी सख्ती से वसूल किया जाता था। जो कर नहीं दे सकते थे या नहीं देना चाहते थे, वे घर छोड़कर जङ्गलों में जा बसे। इससे क्रुद्ध होकर बादशाह ने उन्हें दण्ड देने के लिए एक फ़ौज भेजी। इन अनुचित आचरणों से देश का व्यापार नष्ट हो गया और प्रजा को बड़ी विपत्ति में फँसना पड़ा।

५. भारी कर

इस समय तक सुल्तान काफ़ी बदनाम हो चुका था। उसके साम्राज्य के दूरस्थ स्थानों में आए दिन विद्रोह होने लगे। हमें पता चलता है कि उस समय मुलतान, लाहौर, बङ्गाल, अवध, गुजरात, देवगिरि, वारङ्गल और मलाबार में विद्रोह हुए। उसके जीवन के

सब जगह विद्रोह

अन्तिम वर्ष इन विद्रोहों को दबाने की प्रबल चेष्टा में ही बीते। साधारणतया उसे विजय ही प्राप्त होती थी, पर वह एक ही समय में अनेक स्थानों में उपस्थित नहीं हो सकता था। अतः खण्ड-खण्ड करके उसका सारा साम्राज्य नष्ट होने लगा। बङ्गाल स्वतन्त्र हो गया। उधर दक्षिण में दो शक्तिशाली राज्य स्थापित हुए, जिनका वर्णन हम आगे चलकर करेंगे। अन्त में १३५१ में सम्राट् का ज्वर से देहान्त हो गया। जब वह २६ वर्ष के लम्बे शासन के बाद मरा तो उस समय उसके साम्राज्य का—जो अकाल से विक्षिप्त हो रहा था और विद्रोह से अन्दर ही अन्दर धधक रहा था—ह्रास होना आरम्भ हो गया था।

फ़ीरोज़शाह (१३५१–१३८८)—मुहम्मद तुग़लक के बाद उसका चचेरा भाई—जो एक राजपूत राजकुमारी से उत्पन्न हुआ था—गद्दी पर बैठा। वह धर्मपरायण और कट्टर मुसलमान था। उसका राजत्वकाल प्रजा की शांति और सुख का युग था। कृषि और व्यापार फिर से सुधर गए। सिंचाई के लिए नहरें खुदवाई गईं और बहुत से स्कूल, क़सबे, मस्जिदें, शफ़ाखाने, कुएं और पुल बनाए गए। एक नवीन दिल्ली की स्थापना हुई, जिसका नाम फ़ीरोज़ाबाद रक्खा गया। उसका सबसे अधिक महत्वपूर्ण कार्य्य यमुना की नहर बनवाना था। बादशाह को बाग़ बगीचों से विशेष रुचि थी।

सार्वजनिक कार्य्य

फ़ीरोज़शाह ने अनेक सुधार किए, जिनका प्रजा पर मंगलकारी प्रभाव पड़ा। कृषकों के ऊपर से भारी कर उठा लिए गए और लूटमार से उनकी रक्षा की गई। दण्ड देने की अनेक पाशविक रीतियाँ उठा दी गईं। गुलामों को अनेक दस्तकारियों में शिक्षित किया गया। इनमें

शासन प्रबन्ध

से अनेक सुधारों का श्रेय उसके सुयोग्य मन्त्री मक़बूलखां को था।

फ़ीरोज़शाह कोई सुयोग्य सेना-नायक न था। उसने बंगाल को अपने अधिकार में करने की दो बार चेष्टा की, पर दोनों बार असफल रहा। उसने थट्टा का युद्ध जीता तो, परन्तु उसमें उसे क्षति भी कुछ कम न उठानी पड़ी। उसने दक्षिण पर फिर से अधिकार करने का कोई प्रयत्न नहीं किया।

युद्ध में असफल

१३८८ में ९० वर्ष की आयु में सुल्तान की मृत्यु हुई। उसके आंखें बन्द करते ही साम्राज्य में अराजकता फैल गई और बाद के दुर्बल राजकुमारों के हाथों में शासनाधिकार पहुँचने से प्रान्तीय शासकों को स्वतन्त्र हो जाने का अवसर मिला। इस क्षीण होते हुए साम्राज्य से जौनपुर, गुजरात, मालवा और खानदेश अलग हो गए।

तैमूर लंग का आक्रमण—१३९८—जिन दिनों दिल्ली के राज्य की ऐसी अस्त-व्यस्त अवस्था थी उन्हीं दिनों १३९८ में तैमूर ने उस पर धावा कर दिया। उसने दिल्ली के विक्षिप्त साम्राज्य पर अपनी दृष्टि फेरने से पहले ही एशिया के अन्य अनेक मुल्कों पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसने अपने ९०,००० प्रसिद्ध घुड़सवारों के साथ सिंध नदी को पार किया और अग्नि तथा तलवार के साथ देश पर टूट पड़ा। दिल्ली पहुँचते-पहुँचते उसने एक लाख कैदी बना लिए थे, जिन्हें बाद को क़त्ल कर दिया गया। दुर्बल तुग़लक बादशाह की सेना तैमूर की प्रबल सेना के सामने न टिक सकी और तैमूर ने दिल्ली पर अधिकार करके अपने सम्राट् होने की घोषणा की। उसने नाग-

दिल्ली की लूट

रिकों को रक्षा का वचन दिया, परन्तु इस शर्त पर कि वे उसे बड़ी-बड़ी रक़में पेश करें। धन-संग्रह के समय एक झगड़ा उठ खड़ा हुआ, फलतः क़त्ले आम जारी हो गया और दिल्ली की सड़कें उसके निवासियों के रक्त से भर गईं। दिल्ली की लूटमार पाँच दिनों तक जारी रही। नगर को इस बुरी तरह लूटा गया था कि कहा जाता है कि आगामी पचास वर्षों तक शहर में केवल तांबे के सिक्के ही नज़र आते रहे। तैमूर शहर की कई इमारतों की सुन्दरता पर इतना मुग्ध हुआ कि वह अपनी समरकंद राजधानी को सजवाने के लिए नगर के निपुण वास्तु-शिल्पियों और राजों को अपने साथ ले गया।

लोधी वंश—(१४५०–१५२६) तुग़लक वंश का अन्तिम राजा १४१२ में मरा। उसके बाद लगभग ४० वर्ष तक दिल्ली और उसके आसपास के ज़िलों पर सय्यद शासक राज्य करते रहे। १४५० में गद्दी पर बहलोल ने अधिकार किया और लोधी वंश की नींव डाली। अपने ३८ वर्ष के शासन में उसने दिल्ली की गद्दी की शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित कर दिया और जौनपुर के शक्तिशाली राज्य को जीतने में भी सफल हुआ। उसका पुत्र सिकन्दर भी अपने पिता ही की तरह सुयोग्य और उद्योगी था। वह गुणी शासक और धर्मपरायण मुसलमान था। उसने ग्वालियर और बिहार को अपने अधीन कर लिया।

बहलोल लोधी

सिकन्दर लोधी

इसके पुत्र इब्राहीम में अपने पूर्वजों के जैसे सद्गुणों का अभाव था। इसके धृष्ट व्यवहार से उसके अभिमानी अमीर रूठ गए और अनेक अमीरों ने खुल्लमखुल्ला विद्रोह कर दिया। इनमें से एक

इब्राहीम लोधी और बाबर का हमला

ने काबुल के शासक बाबर को दिल्ली पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दिया। बाबर तो यह चाहता ही था, उसने निमन्त्रण झटपट स्वीकार कर लिया। वह सन १५२६ में भारत में प्रविष्ट हुआ और पानीपत की लड़ाई में इब्राहीम को पराजित करने के बाद महान् मुग़ल राज वंश की स्थापना करने में सफल हुआ।

सारांश

तुग़लक वंश (१३२०–१३८८)

(१) ग़यासुद्दीन तुग़लक—यह तुग़लक वंश की नींव डालने वाला था। इसने १३२५ तक शासन किया। इसका उत्तराधिकारी मुहम्मद तुग़लक हुआ।

(२) मुहम्मद तुग़लक—(१३२५–१३५१)—यह बड़ा विचक्षण विद्वान् था। इसे अपनी योग्यताओं पर अभिमान था। यह बड़ा बुद्धिमान् आदमी था; परन्तु वहमी था। इसलिए इसकी सारी योजनाएँ निरर्थक सिद्ध होती थीं। इसकी कुछ निष्फल योजनाएँ ये हैं—

(१) देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया (२) आक्रमणकारी मंगोलों के साथ युद्ध न करके धन देकर उनको वापस कर दिया, इससे उनको बार-बार हमला करने का प्रलोभन हो गया (३) चांदी के स्थान पर तांबे के सिक्के चलाए (४) नवीन कर लगाए। इन कारणों से इस का शासन बदनाम हो गया और राज्य के बहुत-से भागों में विद्रोह की आग प्रज्वलित हो उठी।

(३) फ़ीरोज़शाह तुग़लक—(१३५१–१३८८)—इसने अपने राज-काल में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न किया। देश के व्यापार और कृषि ने उन्नति की। सिंचाई का प्रबन्ध किया गया। कर इसके

किए गए। फ़ीरोज़शाह कोई सुयोग्य सेनानायक न था। बंगाल को दो बार जीतने का प्रयत्न किया, पर असफल रहा। उसके उत्तराधिकारी शक्तिहीन और अयोग्य थे जिनके शासन-काल में राज्य छोटी-छोटी स्वतंत्र राज्यों में विभक्त हो गया।

सन १३६८ में तैमूर ने हिन्दुस्तान पर आक्रमण किया जिसके परिणाम में क़त्ले आम और लूटखसोट हुआ। मुहम्मद तुग़लक जो कि इस वंश का अन्तिम शासक था १४१२ में मर गया। गद्दी पर सय्यद-वंश का अधिपत्य हो गया जिसने १४१४–१४५० तक राज्य किया। सय्यद वंश के अन्तिम शासक ने बहलोल लोधी के अधिकार में शासन छोड़ दिया। बहलोल लोधी ने लोधी वंश की नींव डाली। लोधी वंश १४५० से १५२६ तक स्थित रहा। बहलोल ने दिल्ली की नष्ट हुई शक्ति और प्रतिष्ठा को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न किया। इसके लड़के सिकन्दर ने भी ऐसा ही किया। सिकन्दर के पुत्र इब्राहीम ने दरबार के अमीरों के साथ दुर्व्यवहार किया; उन्होंने बाबर को भारतवर्ष पर आक्रमण करने का निमन्त्रण दे दिया। फल स्वरूप बाबर ने १५२६ में हिन्दुस्तान पर हमला कर दिया।

प्रश्न

१. मुहम्मद तुग़लक के व्यक्तिगत चरित्र और शासन के विषय में तुम्हारा क्या ज्ञान है?

२. फ़ीरोज़शाह तुग़लक के शासन-प्रबन्ध का वर्णन करो और बताओ कि उसका शासन उसके पूर्वज के शासन-प्रबन्ध से किस बात में भिन्न था।

३. तैमूर के आक्रमण पर एक नोट लिखो।

४. फ़ीरोज़ाबाद, यमुना की नहर, बहलोल लोधी और इब्राहीम लोधी पर संक्षिप्त नोट लिखो।

सुल्तानशाही का अन्त

हम दिल्ली की सुल्तानशाही का तीन से अधिक शताब्दियों का विवरण दे चुके हैं। इस काल में मुसलमानों का प्रभुत्व सिंध से लेकर ब्रह्मपुत्र तक हो गया था और वे दक्षिण तक जा पहुँचे थे, जहां के अधिकांश प्रदेशों में उनका प्रभाव स्थापित हो गया था। राजपूत शक्ति का पूर्ण ह्रास हो चुका था और केवल दुर्गम स्थानों में ही वे कुछ शक्तिशाली थे।

दिल्ली साम्राज्य का पतन मुहम्मद तुग़लक के समय से आरम्भ हुआ। मुसलमान शासकों के शासन में दूरस्थ प्रदेश स्वतन्त्र हो गए। तैमूर के आक्रमण से सुल्तानशाही का प्रभाव सदैव के लिए नष्ट हो गया और उसके बाद ही दिल्ली के आस पास के प्रान्तों ने भी साम्राज्य का जुआ अपने कन्धों से उतार फेंका। केन्द्र-शक्ति की इस दुर्बलता से रहे सहे हिन्दू राज्यों को भी अपनी खोई हुई शक्ति के पुनर्जीवित करने का अवसर मिला। पर फिर भी इससे मुसलमान शक्ति की प्रधानता नष्ट नहीं हुई।

पतन

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत में तीन नवीन शक्तियों का उत्थान आरम्भ होता है जिनसे बाद के इतिहास पर प्रबल प्रभाव पड़ा। तात्कालिक धार्मिक पुनर्जीवन देश के कोने कोने में आरम्भ हो गया और बाद को इसीसे सिक्ख और मराठा जैसी शक्तियां उत्पन्न हुईं। इसी काल में भारत के सामुद्रिक मार्ग से योरूपीय शक्तियों ने प्रवेश किया। बाबर के अधीन मुग़ल आक्रमण ने भारत में एक ऐसा साम्राज्य कायम किया जो तीन शताब्दियों से अधिक समय तक कायम रहा। पर इन नवीन शक्तियों पर विचार करने से पहले उस समय की सभ्यता पर दृष्टि डालना और सुल्तानशाही के विनाश के बाद स्थापित हुई अनेक हिन्दू मुस्लिम रियासतों का संक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में नई शक्तियों का जन्म

उत्तरी भारत के राज्य—अकबर से पहले दिल्ली का कोई शासक बङ्गाल पर पूर्ण अधिकार नहीं कर पाया था। फ़ीरोज़शाह तुग़लक ने उसे अपने अधीन करने के निष्फल प्रयत्न किए थे। बङ्गाल पर समय समय पर अनेकानेक राजवंश राज्य करते रहे, परन्तु उनका इतिहास सामान्य इतिहास के विद्यार्थियों के लिए मनोरंजक न होगा।

बङ्गाल

जौनपुर शहर फ़ीरोज़शाह तुग़लक का बसाया हुआ है। तैमूर के आक्रमण के बाद उसके सूबेदार ने अपने को स्वतन्त्र घोषित किया और एक ऐसा राजवंश स्थापित किया जो कला और साहित्य के संरक्षण तथा प्रोत्साहन के लिए प्रसिद्ध था। शहर में अनेक बढ़िया इमारतें बनाई गईं, जिन

जौनपुर

में से अनेक मुस्लिम कला की उत्कृष्टता का उदाहरण हैं। इस राजवंश का अन्त १५वीं शताब्दी के अन्त में हुआ, जब बहलोल लोधी ने उसको दिल्ली के राज्य में मिला लिया।

अलाउद्दीन से पहले गुजरात मुस्लिम प्रान्त नहीं था। एक शताब्दी बाद उसके शासक ज़फ़रखां ने दिल्ली की अधीनता स्वीकार कर ली। उसके पोते ने अपनी शक्ति का विस्तार किया और अहमदनगर नाम का सुन्दर शहर बसाया। गुजरात के मुसल्मानों की पुर्तगीज़ों के साथ आए दिन लड़ाई होती रहती थी। एक बादशाह ने तो इस पश्चिमी शक्ति के विरुद्ध मिश्र से मैत्री भी स्थापित कर ली थी। अकबर के ज़माने में इस राज्य को दिल्ली के साम्राज्य में मिला लिया गया।

गुजरात

मालवा के उपजाऊ प्रदेश में राजपूतों ने मुसल्मानों की बढ़ती हुई शक्ति को पूरे ज़ोर के साथ रोका। अलाउद्दीन के शासन-काल में मालवा का हिन्दू राजवंश—एक शताब्दी के लगातार संघर्ष के बाद—हमेशा के लिए नष्ट हो गया। तैमूर के आक्रमण के बाद वहां पर एक स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य स्थापित हो गया। उसकी राजधानी माण्डू थी। इस राज्य को गुजरात और राजपूताना के साथ प्रायः युद्ध करना पड़ता था और अन्त में इस पर राजपूतों का अधिकार हो गया।

मालवा

हिन्दुओं की उड़ीसा, गोण्डवाना और राजपूताना की अनेक रियासतों में मेवाड़ की रियासत का विशेष महत्व था। इसके शासक गुहेला राजा थे। जिनके वीरतापूर्ण कार्यों से मध्यकालीन भारतीय इतिहास के पृष्ठ के पृष्ठ भरे पड़े हैं। मेवाड़ के शासकों ने मुस्लिम शक्ति के सामने कभी सिर

मेवाड़

नहीं झुकाया और लगभग छः शताब्दियों तक लगातार युद्ध जारी रक्खा। उनका इतिहास कर्नल टाड तथा श्री गौरीशङ्कर ओझा की लेखनी के प्रताप से अमर हो गया है। तत्कालीन शासकों में राणा कुम्भ का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जिसकी मालवा पर विजय चित्तौर में एक बहुत ऊंचा कीर्ति-स्तम्भ खड़ा करके मनाई गई थी।

दक्षिणी भारत के राज्य—दक्षिण में दो शक्तियों के राज्य स्थापित हुए थे—गुलबर्ग का बहमनी वंश और विजयनगर का हिन्दू साम्राज्य। उक्त दोनों राज्य मुहम्मद तुग़लक के अशांतिपूर्ण राज्य-काल में स्थापित हुए थे। मुसल्मानों की दक्षिण-विजय कभी कायम नहीं रह सकी। बहमनी वंश की स्थापना दिल्ली से राज-विद्रोह के कारण से हुई थी; कुछ ही काल में यह एक शक्तिशाली राजवंश बन गया और अपने अनेक शासकों के अधीन, औरंगज़ेब के समय तक, राज्य करता रहा। इस राज्य का लगभग दो शताब्दियों तक अपने दक्षिण प्रतिद्वन्द्वी विजयनगर राज्य के साथ युद्ध होता रहा। इस राजवंश के विवरण की कोई आवश्यकता नहीं है। हाँ, इसके सुयोग्य मन्त्री महमूद गवान का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इसने अपने समय के तीन बादशाहों के अधीन रह कर राज्य की बड़ी सेवा की और राज्य की सैनिक शक्ति का मान बढ़ाया। इस बुद्धिमान् मन्त्री ने राज्य-प्रबन्ध में अनेक सुधार किए। अन्त में कुछ दरबारियों की चाल से उस पर एक झूठा अभियोग लगाया गया और उसे फांसी दे दी गई। उसकी मृत्यु से इस विशाल साम्राज्य में फूट उत्पन्न हो गई और उसमें से पांच विभिन्न राज्य स्थापित हुए—(१) बिदार, (२) बरार, (३) अहमदनगर, (४) बीजापुर और (५) गोलकुण्डा।

१. बहमनी राज्य

विजयनगर साम्राज्य
१३३६–१५६५

विजयनगर का विशाल साम्राज्य मुसलमानों के निरन्तर आगे बढ़ते हुए आक्रमणों के प्रवाह से आत्मरक्षा करने के उद्देश से स्थापित किया गया था। इस साम्राज्य की उत्पत्ति कुछ अज्ञात-सी है। हरिहर प्रथम और उसके चार भाइयों ने प्रायःद्वीप की समस्त हिन्दू शक्तियों को तुङ्गभद्रा नदी के दक्षिणी तट पर एकत्र किया। उन्होंने विजयनगर शहर को स्थापित किया और उसकी मज़बूत किलेबन्दी की। उनकी शक्ति समुद्र के एक तट से लेकर दूसरे तट तक शीघ्रता से बढ़ गई। उत्तर की ओर उनका बहमनी राज्य के साथ संघर्ष हुआ और इस संघर्ष का मूल कारण कृष्णा और तुङ्गभद्रा नदी के बीच का उपजाऊ दोआबा था।

कृष्णराय

इस राज्य का सबसे अधिक शक्तिशाली राजा कृष्णराय (१५०९–१५३०) था। उसके राज-काल में विजयनगर दक्षिण का सब से अधिक शक्तिशाली राज्य हो गया। उसने अपने मुसलमान पड़ोसी राजाओं को अनेक युद्धों में हराया। परन्तु पुर्तगीज़ों से मेल बनाए रक्खा। कृष्णराय की इन सैनिक सफलताओं के साथ ही साथ कहा जाता है कि उसने अपने साम्राज्य में सिंचाई का उत्तम प्रबन्ध किया। यह राजा लेखक और कवि भी था।

पतन

विजयनगर का साम्राज्य मुस्लिम शक्ति को दक्षिण की ओर बढ़ने से सफलता के साथ [illegible]के हुए था। इस प्रकार यह आक्रमण प्रवाह अने[illegible] तक रुका रहा। वास्तव में मुसलमान राज्यों की [illegible] फूट से लाभ उठा कर इस राज्य ने शक्ति प्राप्त की [illegible] का राज्य [illegible]क का प्रसिद्ध [illegible]छ ही दिनों में रह उन सारे मुस्लिम

राज्यों से, एक एक करके, अधिक शक्तिशाली हो गया। अन्त में सारे मुस्लिम राज्यों ने अपने शक्तिशाली प्रतिद्वन्द्वी को कुचलने के लिए आपस की फूट दूर कर दी और सबने मिलकर उस पर धावा किया। दोनों ओर की सेनाएँ १५६५ में तल्लीकोट में मिलीं। यह युद्ध स्मरणीय था। दोनों ओर की सेनाएँ दिनभर अपने अपने स्थानों पर डटी रहीं। शुरू शुरू में हिन्दू सेना जीतती दिखाई दी, अन्त में मुसलमानों की भयङ्कर गोला-बारी ने फैसला कर दिया। "यह केवल पराजय ही न थी प्रत्युत उत्क्रान्ति थी।" इस के आतंक से विजयनगर की राजधानी ऊजाड़-सी हो गई। पूरे पांच महीने तक विजेता विजयनगर को लूटते पाटते, जलाते और नष्ट-भ्रष्ट करते रहे, यहां तक कि इस भव्य नगर के स्थान में खण्डहर ही खण्डहर दिखाई देने लगे। दो शताब्दियों के गौरव-पूर्ण शासन के बाद विजयनगर के हिन्दू साम्राज्य का शोचनीय अन्त हुआ।

तलीकोट की लड़ाई १५६५

कहा जाता है कि विजयनगर का विशाल और सुन्दर नगर साठ मील के घेरे में बसा हुआ था, जिसके चारों ओर मज़बूत किलेबन्दी थी। वह अनेक सुन्दर मन्दिरों और महलों से सुसज्जित किया गया था और व्यापार का समृद्धिशाली केन्द्र था।

विजयनगर

साम्राज्य का राज्य-प्रबन्ध प्राचीन हिन्दू राजनीति के अनुसार किया जाता था। उसे अनेक प्रांतों में बांटा गया था, जिनके शासक स्वतन्त्र नरेशों की तरह राज्य करते थे। गांवों में पञ्चायत की प्रथा थी। दण्ड-व्यवस्था [illegible]पित हुई थी। राज्य की आय का प्रधान साधन ज़मीन और [illegible] था जो उपज

शासन

का छठा अंश होता था। इसे नक़द वसूल किया जाता था।

विजयनगर के राजा बड़े दक्ष भवन-निर्माता थे। इस समय कला और वास्तु-कला के बहुत से नमूने तैयार किए गए जो प्रतिमा-शिल्प और चित्रण के सारे साधनों से सुसज्जित किए गए। जनता के लाभ के लिए बड़े बड़े काम किए गए।

साहित्य और कला

ये राय लोग संस्कृत और देशी भाषाओं के साहित्य को भी खूब प्रोत्साहन देते थे। उनके प्राम्भिक शासन-काल में वैदिक अध्ययन ने ज़ोर पकड़ा। वेदों के प्रसिद्ध टीकाकार सायणाचार्य के नेतृत्व में इस अध्ययन में खूब बढ़ती हुई। इस समय की रचनाएँ संस्कृत साहित्य की अमूल्य उत्कृष्ट रचनाओं में गिनी जाती हैं।

सारांश

सुल्तानशाही का पतन—दिल्ली का राज्य, जो कि पहले ही से शक्तिहीन हो रहा था, तैमूर के आक्रमण के पश्चात छोटे-छोटे भागों में विभक्त हो गया। बहुत-से राज्य स्वतन्त्र हो गए। उनमें से कुछ ये हैं—

(अ) उत्तरी-हिन्दुस्तान—बङ्गाल और बिहार, जौनपुर, गुजरात, मालवा तथा मेवाड़।

(ब) दक्षिणी हिन्दुस्तान—दक्षिण में दो शक्तिशाली राज्य स्थापित हुए। एक का नाम बहमनी राज्य और दूसरे का विजयनगर था।

(१) बहमनी का राज्य—ज़फ़र खां ने इसकी नींव डाली थी। वह मुहम्मद तुग़लक का प्रसिद्ध दरबारी था। सन १३४७ में वह स्वतंत्र

हो गया। इस वंश में सबसे प्रसिद्ध मुहम्मद गावां था। अन्त में यह राज्य पांच मुसलमानी राज्यों में विभक्त हो गया।

(२) विजयनगर का राज्य—हरिहर प्रथम ने १३३६ में इस राज्य को स्थापित किया। इस वंश का सबसे शक्तिशाली शासक कृष्णराय था। बहुत दिनों तक इस राज्य में और बहमनी राज्य में अनबन रही। अन्त में पांचों मुसलमानी राज्य विजयनगर के विरुद्ध हो गए और १५६५ में तल्लीकोट के मैदान में हिन्दू साम्राज्य का शोचनीय अन्त हुआ।

प्रश्न

१. दिल्ली की सुल्तानशाही के नाश के क्या कारण थे? उसके बाद स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना का संक्षिप्त वर्णन करो।

२. विजयनगर का साम्राज्य किस प्रकार स्थापित हुआ? उनका अपने पड़ोसी बहमनी राज्य के साथ जो संघर्ष हुआ उसकी कथा लिखो।

३. विजयनगर के राज्य-प्रबन्ध पर एक नोट लिखो।

४. मुहम्मद गवान, कृष्णराय और तल्लीकोट पर संक्षिप्त नोट लिखो।

सुल्तानशाही के युग में भारत की सभ्यता

१. शासन—जैसा कि हम कह आए हैं, सुल्तानशाही के ज़माने में भारत हृष्ट-पुष्ट योधाओं से भरी एक विशाल छावनी की तरह था। शासन-प्रणाली स्वच्छन्द-चारिता से युक्त थी और न्याय-विधान कठोर था। हां, ग्राम-शासन की प्रथा पहले जैसी ही थी। ग़ैर मुस्लिम जातियों पर जज़िया कर लगाया जाता था। प्रान्तों का शासन दिल्ली सरकार की ओर से सूबेदार करते थे। अनेक बार ज़मीन के लगान को व्यवस्थित रूप देने का प्रयत्न किया गया था; पर सुल्तानों को अपने सामरिक कार्यों से ही फ़ुर्सत नहीं थी, वे स्थायी शासन-प्रबन्ध की ओर किस प्रकार ध्यान देते?

उच्छृङ्खल शासन प्रणाली

२. इस्लाम का प्रचार—हिन्दू धर्म के आश्चर्यजनक कट्टरपन के होते हुए भी मुसलमानों की संख्या शीघ्रता से बढ़ती गई, परन्तु जातियों और प्रदेशों को सामाहिक रूप से एक साथ मुसल्मान बनाने में सफलता नहीं हुई।

३. मेल करने वाली शक्तियाँ—हिन्दू मुसल्मानों में मेल कराने में भी अनेक शक्तियां काम कर रही थीं। यह बात अनिश्चित है कि बाहर के मुसलमान अपने साथ अपनी संख्या के बराबर स्त्रियां साथ लाए थे या नहीं। यह तथ्य है कि बहुत से मुसल्मानों ने हिन्दू स्त्रियों से विवाह किया। इसका फल यह हुआ कि भारतीय रीतिरिवाज मुसलमान-परिवारों में भी फैलने लगे। जो हिन्दू मुसलमान बने, उनके रीति-रिवाज वैसे ही रहे और इस प्रकार दोनों समाजों के रीतिरिवाजों का संमिश्रण-सा हो गया। इसके साथ ही मुसलमान सूफ़ियों का प्रभाव भी काम कर रहा था। सूफी उस समय के हिन्दू आचार्यों से कई बातों में मिलते जुलते थे।

मेल कराने वाली शक्तियां

४. धार्मिक जागृति—भक्ति आंदोलन—जिस समय हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियाँ एक दूसरी जाति पर अपना अपना प्रभाव डाल रही थीं, उसी समय एक नवीन धार्मिक आंदोलन का जन्म हुआ, जो अनेक रूपों में देश के कोने कोने में फैल गया। पन्द्रहवीं शताब्दी का महान् सुधारक रामानन्द था। उसने जातिपांति को तोड़ कर ऊँच नीच, हिन्दू मुसलमान, सब को एक वर्ग में स्थान दिया और एक नई बरादरी पैदा करने की चेष्टा की, जिसमें ईश्वर-भक्ति पर बल दिया जाता था। उसके उपदेशों को उसके अनुयाई कबीर नामक एक महाकवि जुलाहे ने अपने ढंग से फैलाया। उधर बंगाल में चैतन्य महाप्रभु के उपदेशों से वैष्णव भक्ति में नया जीवन पैदा हो गया। पंजाब में गुरु नानक ने सिक्ख सम्प्रदाय की स्थापना की। इनका जन्म १४६६ में तलवण्डी में हुआ था। इन्होंने

रा द

कबीर, चैतन्य

The Tower of Victory (Chitor)
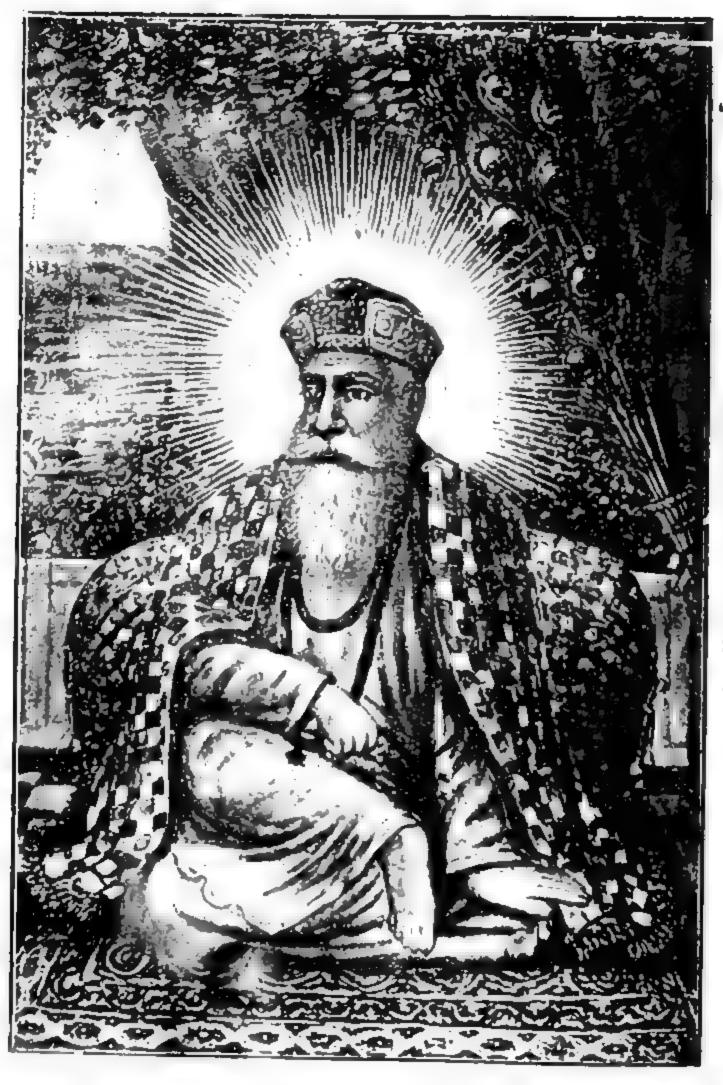
Guru Nanak

अपने सरल सहज ढँग से एक ईश्वर की भक्ति के उपदेश दिए; इन्होंने तत्कालीन धार्मिक और साम्प्रदायिक झगड़ों को दूर करके मेल पैदा करने का बड़ा प्रबल यत्न किया था। उधर महाराष्ट्र में भी यही आन्दोलन ज़ोर पकड़ रहा था। अनेकानेक सन्तगुरुओं ने—जिनमें से नामदेव, श्रीधर, तुकाराम और रामदास जैसे अनेक महान् सन्त थे—मराठों के जीवन में एक विचित्र जागृति कर दी।

गुरु नानक

महाराष्ट्र के साधु

देशी साहित्य की वृद्धि—इस नवीन भक्ति आंदोलन के प्रवर्त्तकों ने अपने उपदेश देशी भाषा में दिए। अतः देशी साहित्य को इस से बड़ा प्रोत्साहन मिला, मराठी, तामिल, हिन्दी, बंगाली, पंजाबी और अन्य भाषाओं में अनेकानेक धार्मिक ग्रंथ लिखे गए। हिन्दू मुसलमानों के नित्य के संसर्ग से एक नई भाषा उर्दू—लश्कर की भाषा—का जन्म हुआ।

प्राचीन हिन्दू धर्म पर प्रभाव—मुस्लिम विजय का पुराने ढँग के हिंदू धर्म पर एक विलक्षण प्रभाव पड़ा—उसकी जातिविषयक संकीर्णता और भी बढ़ गई। स्त्रियों को अधिकाधिक पर्दे में रक्खा जाने लगा। दिमाग़ी ज़िन्दगी का ह्रास-सा हो गया और दक्षिण को छोड़कर भारतीय साहित्य में मौलिक रचनाओं की बहुत कम वृद्धि हुई।

वास्तुकला—सुल्तान इमारतें बनवाने में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने अपने समय में बहुत-से बढ़िया-बढ़िया महल बनवाए। प्रसिद्ध कुतुब मीनार और उसके पास की मस्जिद वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। पुरानी दिल्ली में तत्कालीन वास्तु-कला के

विकास-क्रम के सब तरह के नमूने विद्यमान हैं। मुस्लिम संस्कृति के प्रत्येक स्वाधीन केन्द्र ने अपने निजी ढंग से वास्तु-कला को प्रोत्साहन दिया। जौनपुर, गौड़, अहमदाबाद, माण्डू, गुलबर्ग और अन्य नगरों को अनेक उम्दा कारीगरी के नमूनों से सजाया गया था।

सारांश

सुल्तानशाही के राज-काल में भारतवर्ष की सभ्यता

शासन—सुल्तानशाही के समय में भारत योद्धाओं से भरी एक विशाल छावनी की तरह था। अदालत का प्रबन्ध अच्छा नहीं था, परन्तु न्याय शीघ्र और थोड़े व्यय में हो जाता था। प्रान्तों का शासन सूबेदार करते थे। लगान वसूल करने की व्यवस्था अच्छी नहीं थी।

धर्म—इस्लाम धर्म बड़ी शीघ्रता से फैला। जिस समय भारत में इस्लाम और हिन्दू धर्म एक-दूसरे पर अपना प्रभाव जमा रहे थे, उसी समय देश के अन्दर एक नवीन धार्मिक आन्दोलन का जन्म हुआ। यह भक्ति का आन्दोलन था—रामानन्द, कबीर, चैतन्य और गुरुनानक—बड़े-बड़े धार्मिक सुधारक थे।

साहित्य की वृद्धि—देशी भाषाओं की उन्नति हुई। हिन्दू और मुसलमानों के नित्य के संसर्ग से एक नवीन भाषा उर्दू उत्पन्न हुई।

वास्तु-कला—दिल्ली के शासक मकान बनवाने में बड़ी रुचि रखते थे। उन्होंने अपने समय में बहुत से भव्य-भवन बनवाए।

प्रश्न

१. दिल्ली के सुल्तान शासक किस ढंग के थे ? उनके शासन-

काल में भारत की क्या अवस्था रही ?—संक्षेप में लिखो।

२. सुलतान राजवंश के शासन-काल में इस्लाम ने भारत की वास्तु-कला और साहित्य में क्या वृद्धि की थी ?

३. पठानों के शासन-काल में हिन्दुओं की सामाजिक व्यवस्था में क्या क्या परिवर्तन हुए ? क्या यह इस्लाम का प्रभाव था ?

४. रामानन्द, कबीर, नानक और चैतन्य पर संक्षिप्त नोट लिखो।

———

मुग़ल साम्राज्य

१. बाबर (१५२६-१५३०)

प्रारम्भिक कार्य्य—भारत में मुग़लवंश के नाम से प्रसिद्ध होने वाले राजवंश का प्रथम पुरुष बाबर था। उसकी नसों में चंगेज़खां और तैमूर जैसे दो महान् विजेता पूर्वजों के—जिन्होंने सारे मध्य एशिया को रौंद डाला था—रक्त का संमिश्रण था। बारह वर्ष की आयु में उसने फ़रगना नामक एक छोटे से पैतृक राज्य को प्राप्त किया। उसे अपने अनेक शत्रुओं से निरन्तर युद्ध करना पड़ा। अतएव उसके प्रारम्भिक जीवन में अनेक अद्भुत घटनाएं हुईं। दस वर्ष के लगातार संघर्ष के बाद उसे निश्चय हो गया कि वह अपने राज्य पर अधिकार न रख सकेगा। अतः उसने हिन्दूकुश पार करके अपने आप को काबुल का बादशाह बनाया। इस प्रकार काबुल में राज्य करते हुए उसे बीस वर्ष बीते होंगे कि उसके हृदय में एक नई अभिलाषा काम करने लगी। वह भारत में साम्राज्य स्थापित करने का इरादा करने लगा।

निरन्तर संघर्ष

पानीपत की लड़ाई (१५२६)—भारत के कुप्रबन्ध ने उसकी योजनाओं को पूर्ण करने में और भी सहायता दी। उस समय दिल्ली का शासक एक ऐसा ज़िद्दी बादशाह था जिसने अपने उच्छृङ्खल व्यवहार से अनेक शक्तिशाली अमीरों को रुष्ट कर दिया था। उनमें से कुछ ने बाबर को देश पर आक्रमण करने का न्यौता दिया। पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में बड़ा घोर युद्ध हुआ। यद्यपि शत्रु की सेना बाबर की सेना से कहीं अधिक थी, परन्तु वह अपने युद्ध-कौशल और तोपों की सहायता से इब्राहीम लोधी को बुरी तरह हराने में सफल हुआ।

पानीपत की पहली लड़ाई

संयुक्त राजपूत-शक्ति—अब बाबर दिल्ली और आगरे का स्वामी बन गया; पर अभी उसे कहीं अधिक भयंकर एक शत्रु का सामना करना था। राजपूत सौ युद्धों के विजेता राणा सांगा की अधीनता में एक हो गए थे। राणा सांगा ने मालवा को विजय किया और गुजरात के मुसल्मान बादशाह को हरा दिया था। अनेक युद्धों में भाग लेने के कारण भिन्न भिन्न अवसरों पर उसका एक नेत्र, एक बाँह और एक पैर जाते रहे थे। उसके शरीर पर अस्सी घाव लग चुके थे। राजपूत संख्या में ८०००० थे और एक वीर के नेतृत्व में सङ्गठित हुए मुग़ल योद्धाओं के लिए भी कोई साधारण प्रतिद्वन्द्वी नहीं थे। राजपूतों की प्रारम्भिक सफलता को देखकर बाबर की सेना हताश-सी होने लगी। पर बाबर ने इस समय अपनी अक्लमन्दी से काम लिया। उसने शराब के प्याले तोड़ दिए, अपने गुनाहों का प्रायश्चित्त किया और जोशीली वक्तृता से

राना सांगा

अपने सैनिकों को उत्साह दिलाया। इस प्रकार उसके सैनिकों में फिर हिम्मत पैदा हो गई। युद्ध-क्षेत्र फतहपुर सीकरी था। खूब घमासान युद्ध हुआ। राजपूतों के हृदयों में देश-भक्ति की भावना काम कर रही थी। अतः उन्होंने अनेक बार प्रबल धावे किए; परन्तु इस अवसर पर भी बाबर की तोपों ने बड़ा काम दिया। अन्त में राजपूतों का केन्द्रभाग डांवाडोल हो गया और उनकी सेना के पैर जमे न रह सके। इससे भारी हार और कोई नहीं हो सकती थी। राजपूत छिन्न भिन्न होकर भाग निकले और उनका पीछा किया गया। वीर राणा के प्राण उनके वफादार साथियों की सहायता से बड़ी कठिनता से बच सके। दो वर्ष बाद राणा परलोक सिधारे।

फतहपुर सीकरी की लड़ाई

राना की पराजय

अपनी विजय को पूर्ण करने के लिए बाबर ने चन्देरी के वीर राजा मेदिनी राव के किले पर भी अधिकार कर लिया।

चन्देरी का पतन

बाबर की मृत्यु—इस प्रकार बाबर ने उत्तरी-भारत की दो महाशक्तियों का बल पूरी तरह तोड़ डाला था और अब वह देश के अधिकांश का निर्विवाद प्रभु था। पर वह अपनी विजयों को स्थायी रूप न दे सका और १५३० में मर गया।

बाबर को साहित्य में बड़ी रुचि थी और वह स्वयं भी एक निपुण लेखक था। उसने अपने जीवन की घटनाएँ बड़ी सुन्दर भाषा में वर्णन की हैं। इस मनोरञ्जक पुस्तक का नाम तुज़क बाबरी है।

बाबर के गुण

२. हुमायूँ (१५३०–१५५६)

हुमायूँ की नाज़ुक हालत—बाबर के बाद दिल्ली की गद्दी पर उसका सबसे बड़ा पुत्र हुमायूँ बैठा। उसका छोटा भाई कामरान काबुल, कन्धार और पंजाब का शासक नियत किया गया। इस विभाग ने हुमायूँ को पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के धन जन के साधनों से वञ्चित रख कर उसकी स्थिति को बहुत कुछ कमज़ोर कर दिया। वह अपने राज्य में भी खतरे से खाली नहीं था। उसे पूर्व और पश्चिम की ओर से अपने शक्ति सम्पन्न शत्रुओं का भय बना रहता था। सबसे पहले उसने बिहार में अपने शत्रुओं को परास्त किया, पर अपनी इस जीत को उसने आगे नहीं बढ़ाया।

हुमायूँ और उसके शत्रु

वह वीर शेरखां के अफ़ग़ानों को पूर्णतया कुचले बिना ही गुजरात के बादशाह से युद्ध करने चल पड़ा। गुजरात का बादशाह हार गया और जगह जगह उसका पीछा किया गया। अब हुमायूँ ने अपना मुल्क अपने छोटे भाई के सुपुर्द करके अफ़ग़ान सरदार शेरखां का सामना करने की ठानी, जो इस बीच में काफ़ी शक्ति प्राप्त कर चुका था। हुमायूँ ने उसका सामना करने के लिए शीघ्रता के साथ यात्रा की।

शेरखाँ का सफल विद्रोह—शेरखां ऐसे अवसर पर हुमायूँ की सेना का मुकाबला करना ठीक नहीं समझता था। उसने अपने परिवार और हीरे जवाहिरात को रोहतास के मज़बूत किले में भेज दिया और शाही सेना को बङ्गाल में बिना रोक टोक के आने दिया। हुमायूँ ने बिना किसी प्रतिरोध के गौड़ पर अधिकार

कर लिया। पर यहां आकर उसे वर्षा ऋतु में रुकना पड़ा। कई महीने तक उसे विवश होकर बैठा रहना पड़ा। उसके सैनिक बङ्गाल की नमीदार आबोहवा से निरुत्साहित हुए और इस रोग-जनक ऋतु से उनकी संख्या कम होने लगी। जब युद्ध का समय आया, तो चतुर शेरखां भी अपने आश्रय-स्थान से निकल आया और उसने शाही सेना का दिल्ली से सम्बन्ध तोड़ दिया।

अब हुमायूँ भागने लगा, परन्तु १५३९ में बक्सर के निकट उसे बाधित होकर शत्रु का सामना करना पड़ा और वहां उसकी पराजय हुई। उसके बाद वह किसी तरह अपनी राजधानी में जा पहुँचा और नई सेना इकट्ठी करके दूसरे साल कन्नौज में फिर भिड़ा और इस बार भी हारा। अब युद्ध की आशा व्यर्थ थी। भारत का साम्राज्य हाथ से निकल चुका था। हुमायूँ वहां से भाग कर अपने भाई कामरान के पास लाहौर गया। वहां भी उसकी कोई आवभगत न हुई। इसके बाद वह सिन्ध और फिर फारस की ओर भाग गया और १५ वर्ष तक भारतवर्ष से उसका कोई सम्बन्ध न रहा।

कन्नौज में हुमायूँ की हार, १५४०

शेरशाह सूरी—(१५३९–१५४५) यह अफ़ग़ान विद्रोही अब भारत का बादशाह बन गया। इसने अपना नाम शेरशाह सूरी रक्खा। यह पांच साल तक ही शासन का आनन्द उठा सका। उसने पंजाब, मालवा और मारवाड़ पर विजय प्राप्त की। यह जोधपुर के किले को जीतने में सफल न हो सका। राजपूतों का एक छोटा-सा दल उसके तम्बू पर इतनी तेज़ी से झपटा कि उसे प्राण बचाने मुश्किल हो गए। इस देश की उपज

पंजाब और मालवा पर विजय

की ओर संकेत करते हुए उसने कहा था—"मैं मुट्ठी भर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान की हुकूमत से हाथ धोने लगा था।" इसके बाद वह कालिंजर की ओर बढ़ा। कालिंजर उस समय बुन्देलों का दुर्ग था। यहां बड़ा घमासान युद्ध हुआ। दुर्ग तो उसने जीत लिया, परन्तु प्राण देने पड़े। दुर्ग के घेरे के समय आतशबाज़ी के एक छकड़ें में आग लग गई, जिस से वह जल कर मर गया।

सुधार—शेरशाह बड़ा बुद्धिमान् शासक था। यदि वह कुछ काल जीवित रहता तो स्थिर रूप से अपना साम्राज्य स्थापित करके छोड़ता और फिर महान् मुग़लों को भारत के इतिहास में कोई स्थान न मिलता।

योग्य शासक

वह अपने सुधारों की बदौलत इतने थोड़े समय में ही भारत के बड़े बड़े सम्राटों में गिने जाने योग्य हो गया। आगे चल कर अकबर ने जितने सुधार किए थे, उनमें से अनेक की नींव शेरशाह पहले से ही डाल गया था।

शासन प्रबन्ध—शेरशाह ने माप के द्वारा ज़मीन का लगान नियत किया था और किसानों को अनुचित दबाव से सुरक्षित कर दिया था। पुलिस का बड़ा सुन्दर प्रबन्ध था। सड़कें बड़े अच्छे रूप में रक्खी जाती थीं। उसके अन्य अनेक सार्वजनिक कार्य्यों में ग्राण्ड ट्रंक रोड विशेष उल्लेखनीय है। उसने टकसालों में सुधार किया और बनावटी सैनिकों के प्रवेश को रोकने के लिए सेना में अनेक सुधार किए।

हुमायूँ की पुनः राज्य-प्राप्ति—शेरशाह के बाद उसका पुत्र उसकी गद्दी पर बैठा और आठ वर्ष तक राज्य करता रहा।

उसके बाद तीन प्रतिद्वन्द्वी राजकुमारों ने गद्दी का दावा किया और भिन्न भिन्न प्रान्तों में शासन करना आरम्भ कर दिया। इस बीच में हुमायूँ ने भी फ़ारस के बादशाह की सहायता से अपने भाई को हरा कर काबुल पर अधिकार कर लिया था। इसके बाद उसने दिल्ली की ओर यात्रा की, सूरवंश के एक शाहज़ादे की सेना को परास्त किया और पन्द्रह वर्ष के बाद पुनः गद्दी पर बैठा। इसके कुछ ही समय बाद वह सीढ़ियों से गिर कर मर गया।

सारांश

मुगलों का वंश

बाबर—१५२६ से १५३० तक बाबर का प्रारम्भिक जीवन बड़ा कष्टमय गुजरा। वह अपने फरग़ाना के राज्य से बाहर निकाल दिया गया। परन्तु सौभाग्य से काबुल का बादशाह बन गया। १५२६ ई० में इब्राहीम लोधी के सरदारों ने उसे बुला भेजा। उसने उनकी बात मान ली और १५२६ ई० में पानीपत के मैदान में इब्राहीम को पराजित किया। यह पानीपत की पहली लड़ाई कहलाती है। फिर १५२७ ई० में फतहपुर सीकरी के मैदान पर राजपूतों से युद्ध किया। राजपूतों ने राणा सांगा के नेतृत्व में वीरता से सामना किया, परन्तु बाबर को विजय प्राप्त हुई। बाबर की १५३० में मृत्यु हो गई।

हुमायूँ—१५३० से १५५६ तक। हुमायूँ जो बाबर का सब से बड़ा पुत्र था हिन्दुस्तान के सिंहासन पर बैठा, उसके भाई कामरान ने पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान पर अधिकार कर लिया, परन्तु हुमायूँ के साथ उसका बर्ताव सच्चा नहीं था। बहादुरशाह गुजरात में विद्रोह फैला रहा था और बंगाल में शेरखां पठान अपनी शक्ति बढ़ा रहा था। बहादुरशाह को पराजित करके हुमायूँ ने शेरशाह पर चढ़ाई की, वह भागे

ही बढ़ता गया। शेरखाँ ने मार्ग रोककर राजधानी से उसके पत्र व्यवहार की श्रृङ्खला तोड़ दी। १२३६ ई० में चौसा के स्थान पर हुमायूं को हरा दिया। हुमायूं भारत को छोड़ कर सीधा ईरान देश को चला गया।

सूरी वंश—शेरशाह सूरी १२४० से १२४५ ई० तक। शेरखां शेरशाह सूरी की उपाधि धारण करके हिन्दुस्तान का बादशाह बन गया। उसने थोड़े समय ही राज्य किया; क्योंकि वह १५४५ ई० में युद्ध करते करते ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

वह एक योग्य शासक था, उसने किसानों का विशेषरूप से ध्यान रक्खा और लगान का प्रबन्ध ठीक-ठीक कर दिया।

उसने नियमानुसार डाकखाने स्थापित किए और सड़कें बनवाईं, जिसके दोनों ओर छाया के लिए वृक्ष लगवाए। उसके सर्वसाधारण के लिए उपयोगी कामों में से जरनैली सड़क विशेष तौर पर प्रसिद्ध है।

शेरशाह के उत्तराधिकारी दुर्बल तथा अयोग्य थे, इसलिए हुमायूं १५५५ ई० में दोबारा हिन्दुस्तान का राज्य प्राप्त करने में सफल हो गया। परन्तु वह थोड़े ही महीनों के पश्चात मर गया।

प्रश्न

१. बाबर के प्रारम्भिक कार्यों का वर्णन करो और बताओ कि उसने भारत के साम्राज्य की नींव किस प्रकार डाली थी।

२. पानीपत की पहली लड़ाई का संक्षिप्त वृत्तान्त लिखो।

३. गद्दी प्राप्त करने के बाद हुमायूँ को कैसी दिक्कतें पेश आईं? उसके इस निर्वासन का कौन और किस प्रकार उत्तरदायी था?

४. शेरशाह के राज्य-प्रबन्ध पर एक संक्षिप्त नोट लिखो और यह दिखाने की चेष्टा करो कि वह एक योग्य शासक था।

---

३. महान् अकबर (१५५६-१६०५)

राज्याभिषेक—अकबर भारत पर शासन करने वाले मुसल्मान बादशाहों में सबसे बड़ा था, यह अपने पिता हुमायूँ की मृत्यु के समय केवल चौदह वर्ष का था। बड़े भारी संकट और कठिनाई की स्थिति में उसके गुरु बैरामखां की राजभक्ति और युद्ध-कौशल ने उसके जीवन और सिंहासन की रक्षा की।

पानीपत की दूसरी लड़ाई (१५५६)—अकबर के अगणित शत्रुओं में कुशाग्र बुद्धि हेमूँ सबसे अधिक खतरनाक था। यह बंगाल के अफ़ग़ान राजा का प्रधान था। अफ़ग़ानों और राजपूतों की बड़ी भारी सेना की सहायता से वह सर्वत्र विजय प्राप्त करता था। उसके साथ बैरामखां की पानीपत में बड़ी लड़ाई हुई। मुग़ल सेना संख्या में बहुत थोड़ी थी और निराश सी हो चली थी कि इसी समय एक बाण से हेमूँ की आंख फूट गई और युद्ध का सेहरा बैरामखां के सिर रहा। हेमूँ को पकड़ कर मार डाला गया। आगरा और दिल्ली पर अधिकार कर लिया गया और शेर-

हेमूँ की हार और मौत
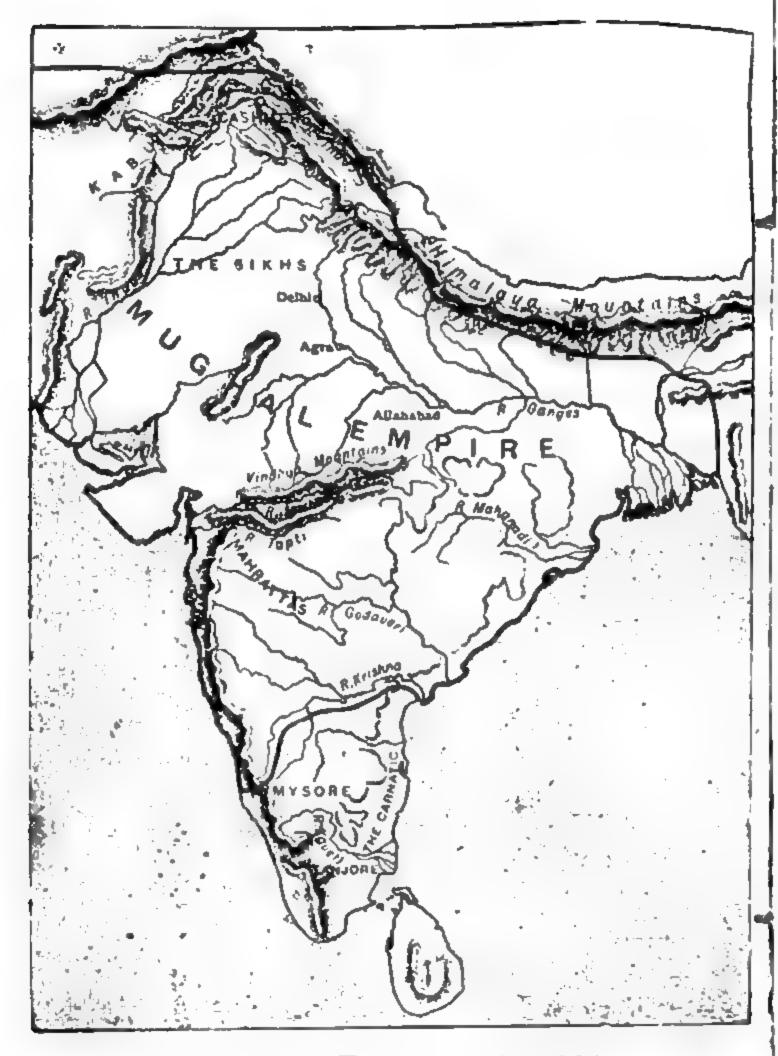
Akbar

The Mughal Empire under Akbar

शाह के सम्बन्धियों के स्वत्वों को थोड़े ही दिनों में हमेशा के लिए रद्द कर दिया गया।

बैरामखाँ का निकाला जाना—अकबर के ऊपर बैरामखां के बहुत एहसान थे। पर वह उसके नियंत्रण से मन ही मन कुढ़ता रहता था। बैरामखां के अभिमान-पूर्ण व्यवहार से उसके अनेक शत्रु हो गए थे जो अवसर पाते ही उसके विरुद्ध युवक सम्राट् के कान भरते रहते थे। अठारह वर्ष की आयु में अकबर ने अपने गुरु को बर्खास्त कर दिया और शासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली। बैरामखां ने विद्रोह किया, पर उसे हरा दिया गया और फिर क्षमा कर दिया गया। अब युवक सम्राट् ने अपनी शक्ति साम्राज्य के विस्तार करने और जीते हुए देशों पर

असफल विद्रोह

पूरी तरह अधिकार बिठाने में लगाई। जब वह आधी शताब्दी के शासन के बाद मरा तो अपने पीछे एक सुदृढ़ रूप में स्थापित विशाल साम्राज्य छोड़ गया। उसकी इस सफलता का रहस्य उसके आचरण और नीति में छिपा हुआ था।

अकबर का चरित्र—शरीर में अकबर अपने प्रसिद्ध दादा की भांति ही मज़बूत और फुर्तीला था। उसका बाल्यकाल सैनिक जीवन की कठिन परिस्थिति में बीता था, इसलिए बढ़ती हुई अवस्था के साथ उसका शरीर भी खूब हृष्ट पुष्ट हुआ। उसके साहस और युद्ध-कौशल से शत्रुओं के हृदय दहल जाते थे।

सेनानायक और राजनीतिज्ञ

अपनी युद्ध-कौशलता, मौलिकता, शारीरिक बल और दृढ़ संकल्पों की बदौलत वह विख्यात सेनाध्यक्ष, राजनीतिज्ञ और शासक हो गया।

वह अनेक कार्यों में दिलचस्पी लेता था। वैसे तो वह बिल्कुल अनपढ़ था, पर ज्ञानचर्चा में बड़ा मन लगाता था और कला-कौशल की ओर विशेष ध्यान देता था। पर उसका सबसे बड़ा गुण उसकी मौलिकता थी जिसके प्रताप से उसने अपने पूर्वज शासकों के रीतिरिवाजों को त्याग दिया था। उसने अपनी प्रतिभा की बदौलत एक नवीन नीति निकाली जिसकी सफलता उसके प्रभावशाली व्यक्तित्व के प्रताप से स्वयं सिद्ध-सी थी। उसने यह बात जान ली कि उसके विशाल साम्राज्य की भित्ति सारी प्रजा की प्रसन्नता की नींव पर रक्खी जानी चाहिए, केवल मुट्ठी भर मुसल्मानों की प्रसन्नता पर नहीं। बात बहुत मार्के की थी और उसे कार्यरूप में लाने के लिए वह उसमें अपनी स्वाभाविक स्फूर्ति और अथक परिश्रम के साथ लग गया।

योजनाओं की मौलिकता

हिंदुओं के संबंध में एक नई नीति

अकबर की प्रारम्भिक विजय—पानीपत की लड़ाई के बाद मुगलों ने ग्वालियर, अजमेर और जौनपुर पर अधिकार किया। मालवा पर १५६१–१५६२ में अधिकार किया गया। दूसरे साल गोंडवाना को अधिकार में करने का प्रयत्न किया गया। यहां अकबर को रानी दुर्गावती से सामना करना था। यह महिला स्फूर्ति और सजीवता की मूर्त्ति थी और अपनी प्रजा पर बड़ी बुद्धिमत्ता और योग्यता के साथ शासन करती थी। उसने अपनी तुच्छ-सी सेना-सामग्री के द्वारा काफ़ी सामना करने के बाद आत्मघात करके अपने मान की रक्षा की।

ग्वालियर, अजमेर, जौनपुर और मालवा

इसके बाद कुछ वर्षों तक अकबर अपने उपद्रवी अफ़सरों को दबाने में लगा रहा। उसके कुछ अत्यन्त विश्वास पात्र अफ़सरों ने विद्रोह किया और इतनी अथक वीरता के रहते हुए भी उसे उन्हें वश में लाने में कई वर्ष लग गए। उसने अपने भाई हाकिम मिर्ज़ा के पक्षपाती एक भयङ्कर दल को भी दबा दिया।

हाकिम मिर्ज़ा

अकबर और राजपूत—अकबर ने अपने शासनकाल के प्रारम्भ में ही यह बात जान ली थी कि उसकी हुकूमत प्रजा की एकता और प्रसन्नता से क़ायम रह सकती है। राजपूतों की शूरता और राजभक्ति को वह जानता था। उसने अपनी प्रतिभा के द्वारा यह बात ताड़ ली कि इस शक्तिशालिनी जाति के साथ नज़दीकी सम्बन्ध क़ायम करने से हिन्दू विरोध करना छोड़ कर सदैव के लिए शान्त हो जाएँगे, उसे अपने उच्छृंखल अफसरों को काबू में रखने योग्य शक्ति प्राप्त हो जायगी और साम्राज्य-विस्तार के लिए उसके पास काफी सैनिक-सामग्री एकत्र हो जायजी।

अकबर ने अम्बर की राजकुमारी के साथ विवाह किया—जिसका पुत्र सलीम राज्य का उत्तराधिकारी हुआ—और इस प्रकार एक नवीन स्थिति का जन्म हुआ। साम्राज्य के सैनिक और शासन प्रबन्ध सम्बन्धी सारे ऊँचे ओहदे हिन्दुओं के लिए खोल दिए गए। अब शाही नौकरियों में तरक्क़ी पाने के लिए केवल योग्यता और राजभक्ति ही की आवश्यकता थी। उसकी नीति से प्रायः सारे राजपूत राजा उसके वशवर्ती हो गए और "उसके साम्राज्य के आधार स्तम्भ और

राजपूत राजकुमारी के साथ विवाह-सम्बन्ध

आभूषण बन गए।" उसकी सेना में लगभग आधे हिन्दू थे। सेना में राजपूतों का सिक्का जमा हुआ था। उसके कई परम प्रसिद्ध सेनानायक भी—मानसिंह, टोडरमल आदि—हिन्दू ही थे।

ज़जिया उठा दिया गया

राजपूतों के हृदय पर अधिकार करने के लिए उसने युद्ध में बन्दी बनाए गए मनुष्यों को दास बनाने का रिवाज, जज़िया कर और तीर्थ-यात्रा के कर भी उठा दिए।

मेवाड़ ने आत्म-समर्पण नहीं किया—मेवाड़ के वीर राजपूतों ने आत्म-समर्पण नहीं किया। उसके स्वाभिमानी नरेशों ने विवाह-सम्बन्धी प्रस्तावों को घृणा के साथ ठुकरा दिया। अकबर ने चित्तौड़ पर चढ़ाई की। घेरा बहुत दिनों तक पड़ा रहा। अपनी प्राचीन परिपाटी के अनुसार सेना का एक एक सिपाही कट मरा।

चित्तौड़ का पतन

चित्तौड़ के पतन के बाद रणथम्भोर और अन्य कई दुर्गों पर क़ब्ज़ा किया गया। इसी समय इस रियासत का शासन इतिहास प्रसिद्ध राणा प्रताप के हाथ में आया। इन्होंने अकेले, असहाय, चौथाई शताब्दी तक, अकबर और राजपूतों की सम्मिलित शक्ति का सामना किया।

राणा प्रताप

इस अवसर पर इन्होंने जो जो उज्ज्वल कार्य्य किए, आज वे उस स्थान की प्रत्येक घाटी में गूँज रहे हैं; उनकी गाथा हरएक सच्चे राजपूत के हृदय में लिखी हुई है। "मेवाड़ का प्रत्येक स्थल राणा प्रताप के किसी न किसी यश से पूर्ण कार्य्य किसी अपूर्व विजय, अधिक सम्भवतः किसी गौरवपूर्ण पराजय से पवित्र है।"

हल्दीघाटी की लड़ाई—प्रताप के विपरीत सारी शक्तियाँ

थीं, पर बप्पा रावल के वंशज ने अपने शत्रु को कभी सिर नहीं झुकाया। हल्दीघाटी की प्रसिद्ध लड़ाई (१५७६) में मेवाड़ के बड़े बड़े योद्धाओं का रक्त उसकी सम्मान रक्षा के लिए बहा। उनके मुट्ठी भर सैनिकों का शक्तिशाली शत्रु की विशाल सेना के साथ क्या मुक़ाबला ?—उसके अतिरिक्त अकबर के पास बढ़िया तोपें थीं। अतः प्रताप अब पहाड़ों में जाकर रहने लगे और वहीं उसी शोचनीय अवस्था में वीरतापूर्वक सामना करते रहे।

वह जिस घाटी में जाते वहीं उनका पीछा किया जाता, पर वह अपने व्रत पर अटल रहे। एक बार उन्होंने अपने इने गिने स्वामिभक्त अनुयायियों के साथ सिंधु पार कर जाने का विचार किया। इस अवसर पर भामाशाह नामक उनके एक वृद्ध मन्त्री ने अपनी पीढ़ियों का इकट्ठा किया हुआ धन उनकी भेंट कर दिया। इस धन की सहायता से महाराणा प्रताप अजमेर और चित्तौड़ को छोड़ कर अन्य सारे मेवाड़ पर दुबारा अधिकार करने में सफल हुए। उनके वीरतापूर्ण कार्य्यों से सारा देश गूँज उठा। अकबर अपने वीर शत्रु को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखता था; उसने भी उनके साथ अब छेड़ छाड़ करनी छोड़ दी। १५९७ में राणा प्रताप परलोक सिधारे।

अकबर की उत्तरकालीन विजय—अब अकबर के सामने अपने अभिलाषा की पूर्ति के लिए नए मैदान पड़े थे। गुजरात, बंगाल, काबुल, काश्मीर, सिंध, कन्धार और उड़ीसा सब पर एक एक करके अधिकार कर लिया गया। उत्तरी-भारत में मुग़लों की सर्वत्र विजय दुन्दुभी बजने लगी। अब उसने दक्षिण की ओर दृष्टि

दक्षिण पर चढ़ाई

फेरी। यहाँ उसे अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी। अहमदनगर की रक्षा चांदबीबी बड़ी योग्यता से कर रही थी। इस वीर रानी के मरने के बाद अहमदनगर बात की बात में हाथ में आ गया। अकबर ने अपने दक्षिणी इलाके को तीन भागों में विभक्त किया—अहमदनगर, बरार और खानदेश। इस प्रकार उसका साम्राज्य अफ़ग़ानिस्तान से गोदावरी नदी तक फैल गया।

चांदबीबी

अकबर के शासन सुधार—१ लगान व्यवस्था—सम्राट् का लगान सम्बन्धी सुधार अर्थसचिव टोडरमल ने उसी ढंग पर किया जिस ढंग पर शेरशाह सूरी ने किया था। यही व्यवस्था कई शताब्दियों से चली आ रही है और अब भी भारत की लगान व्यवस्था की आधार स्वरूप है। भूमि के नाप का एक पैमाना नियत कर दिया गया और सारी भूमि को नापा गया। उपज के लिहाज़ से भूमि को चार भागों में बांटा गया। सरकार का कर उपज का तृतीयांश था। कर दोनों प्रकार से—नक़द और अनाज के रूप में लिया जाता था, यद्यपि नक़द रुपया लेना पसन्द किया जाता था। कर कृषकों से सीधा लिया जाता था और इस प्रकार कृषक बीच के जमींदार के पंजे से बच जाते थे। उनकी आचरणहीन अफ़सरों के दबाव और अत्याचारों से रक्षा की जाती थी।

टोडरमल के लगान-सम्बन्धी सुधार

इसका फल यह हुआ कि सम्राट् की आय बहुत अधिक बढ़ गई।

२. शासन प्रबन्ध—साम्राज्य को १८ प्रांतों में बांटा

अठारह सूबे और सूबेदार

गया था और उन प्रांतों को फ़रगानों और सरकारों में बांटा गया था। प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार था जिसकी सैनिक और सिविल अफ़सर सहायता करते थे। शहरों में कोतवालों और क़ाज़ियों को नियुक्त किया गया था। गांवों का न्याय-विधान उनकी पञ्चायतों के अधीन छोड़ दिया गया था।

कोतवाल और क़ाज़ी

३. सैनिक सुधार—झूठी भर्ती को रोकने की युक्तियां निकाली गईं। सेना में ३३ पद बनाए गए थे जिनमें १०,००० सैनिकों के अधिनायक से लेकर १० सैनिकों के अधिनायकों तक के पद थे। अकबर ने सैनिकों को भूमि दान की प्रथा को हटाने का प्रयत्न किया। सेना-नायकों को अच्छा वेतन दिया जाता था और उन्हें अपने पद के योग्य घोड़े और हाथी रखने पड़ते थे। इस सैन्य के अतिरिक्त थोड़ी-सी नियत सेना भी थी।

सैनिक अफ़सरों के ओहदे

४. सामाजिक सुधार—अकबर ने बलपूर्वक सती की प्रथा उठा दी। जहाँ तक राज्य का सम्बन्ध था हिन्दुओं में विधवा विवाह की अनुमति दे दी गई। गाय,बैल और अन्य पशुओं के वध का निषेध कर दिया गया।

सती प्रथा का निषेध

अकबर के धार्मिक विचार—अकबर बड़ा धार्मिक था। उसकी सतर्क मति सङ्कुचित-हृदय मौलवियों के उपदेश से संतुष्ट नहीं हो सकती थी। उसने हिन्दू घरानों में विवाह किए थे, इस कारण भी शायद उसके धार्मिक

अनेक प्रभाव

विचारों पर हिन्दुत्व का प्रभाव पड़ा होगा। अपने शासन के प्रारम्भिक काल में उसका परिचय प्रसिद्ध सूफ़ी शेख मुबारक से हुआ जिसके फ़ैज़ी और अबुल फ़ज़ल नामक दो पुत्र उसके हार्दिक और अन्तरंग मित्र हो गए। उसने धर्म-चर्चा की मण्डली भी बनाई जिसमें सब मत-मतान्तरों के मुसलमान, ब्राह्मण, ईसाई और अन्य लोग सम्मिलित हो सकते थे। उसने गोआ से पादरियों की एक मण्डली को बुलाया जो तीन वर्ष तक वहाँ रही, पर वह उसे अपने मत का अनुयायी न बना सकी।

दीने इलाही—अन्त में १५८२ में उसने एक नया मत चलाया जिसका नाम उसने दीने इलाही रक्खा। इस नवीन धर्म का आध्यात्मिक गुरु अकबर स्वयं बना। उसके अनुयायी परमात्मा की शक्ति में विश्वास करने वाले और पशुओं के मांस से परहेज रखने वाले होते थे। इस नवीन मत के रीतिरिवाज ब्राह्मण और पारसी धर्म से लिए गए थे। इस धर्म का अनुयायी बनने के लिए किसी को विवश नहीं किया जाता था और उसके मानने वालों की संख्या भी अधिक नहीं बढ़ी।

अकबर नए मत का पैगम्बर

साहित्य और कला—सम्राट् को साहित्य और कला में बड़ी रुचि थी। उसने अनेक विषयों पर एक बड़ा-सा पुस्तकालय इकट्ठा किया। विद्वान् और कला-विद् उसके दरबार में जाते और उदारता के साथ पुरस्कार पाते थे। अनेक संस्कृत पुस्तकों का फ़ारसी में अनुवाद किया गया। फ़ैज़ी फ़ारसी का एक बड़ा कवि था। अबुल फ़जल इतिहास का एक बड़ा विद्वान् था। रहीम को हिन्दी के पुराने कवियों में सम्मान का स्थान मिला हुआ है। बीरबल को तो भारत

अबुल फ़जल और रहीम

का प्रत्येक बालक अच्छी तरह जानता है। उसकी हास्य और व्यंग भरी उक्तियां पढ़ने की चीज़ें हैं। अकबर के समय में ब्रज-भाषा के महाकवि सूरदास ने अपनी ओजस्विनी और प्रसादगुण पूर्ण कविताएं रची थीं। उस समय के सबसे बड़े कवि तुलसीदास थे जिनकी "रामायण" अब भी हिन्दी भाषा-भाषी लोगों की धर्म-पुस्तक है।

सूरदास और तुलसीदास

अकबर साहित्य और कला दोनों में एक-सी रुचि रखता था। तत्कालीन अनेकानेक प्रसिद्ध हिन्दू-मुसलमान कलाविद् उसके दरबार के आभूषण थे। दरबारी गायक तानसेन अपने समय का सर्वश्रेष्ठ गायक समझा जाता था। अकबर ने अपने शासन-काल में जितने भवन बनवाए उनमें फतहपुर सीकरी के भवन विशेष उल्लेखनीय हैं। वहां वास्तु-कला के उत्कृष्ट नमूने देखने को मिलते हैं।

तानसेन

अकबर की मृत्यु—इस महान् सम्राट् के अन्तिम दिन शान्ति और सुख के साथ न कट सके। उसके अनेक गाढ़े मित्र पहले ही मर चुके थे। उसके दो सबसे छोटे पुत्र अधिक शराब पीने के कारण मर गए थे। सबसे बड़े पुत्र ने विद्रोह करके उसके सब से प्रिय मित्र अबुल फ़ज़ल की हत्या कर डाली थी। इस आघात को अकबर सहन न कर सका। इस प्रकार पचास वर्षों तक सुन्दर और यशपूर्ण शासन करने के बाद अकबर १६०५ में परलोक सिधारा। उसका जीवन बड़ा शानदार था। इसका राज्य-काल भारत के इतिहास में सदैव के लिए स्मरण रहेगा।

अन्तिम काल में दुःख

सारांश

अकबर महान—१५५६ से १६०५ तक

प्रारम्भिक कठिनाइयां—अकबर चौदह वर्ष का था जब हुमायूँ मर गया। चारों ओर शत्रु ही शत्रु थे। इसके गुरु बैरामखां ने उसके जीवन तथा सिंहासन को शत्रुओं से बचाए रक्खा। सन १५५६ ई० में पानीपत की दूसरी लड़ाई में हेमूँ की हार हुई। बैराम ने ग्वालियर, अजमेर, जौनपुर, रणथम्भोर तथा मालवा को विजय किया। सन १५६० ई० में अकबर ने राज-काज का काम अपने हाथ में लिया और बैराम को पदच्युत कर दिया क्योंकि वह बड़ा अभिमानी हो गया था।

अकबर की विजय-माला—मालवा, गोंडवाना, गुजरात, काबुल, काश्मीर, सिन्ध तथा कन्धार को इसने एक एक करके जीत लिया। फिर अपना ध्यान दक्षिण की ओर किया। अहमदनगर में चांदबीबी ने बड़ी योग्यता के साथ अकबर की सेना का सामना करके उसे पीछे धकेल दिया। परन्तु इस नारी-रत्न की मृत्यु के पश्चात् यह प्रान्त अकबर के अधिकार में आगया। खानदेश तथा बरार भी राज्य में सम्मिलत कर लिए गए।

अकबर और हिन्दू—अकबर की नीति हिन्दुओं के प्रति नवीन प्रकार की थी क्योंकि:—

१. उसने राजपूत घराने में विवाह किया, राजा भगवान सिंह और मान सिंह उसके सम्बन्धी थे।

२. उसने हिन्दुओं को ऊँचे पद दिए, टोडरमल और बीरबल उसके दरबार में विशेष स्थान रखते थे।

३. उसने जज़िया और यात्रा के कर हटा दिए। परतु मेवाड़ के

राजपूतों ने अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की और राणा प्रताप जीवन भर अकबर का मुकाबला करता रहा।

अकबर के सुधार—लगान—लगान में सुधार का काम राजा टोडरमल की उग्रबुद्धि का फल था। माप की एक कसौटी नियत की गई और उसी के द्वारा सारी भूमि को मापा गया। उपज का तीसरा भाग लगान के रूप में नियत किया गया।

शासन प्रणाली—सारा देश १८ प्रान्तों में विभक्त किया गया। हरएक प्रान्त अथवा सूबा एक राज प्रतिनिधि के अधीन किया गया। बड़े २ नगरों में कोतवाल तथा काज़ी (न्यायाधीष) नियत किए गए।

सैनिक—सेना के अधिकारियों को ३३ दर्जों में बांटा गया। इन दर्जों में दस सिपाहियों के अधिकारी से लेकर दस हज़ार सिपाही के अधिकारी तक सब सम्मिलित थे।

सामाजिक—अकबर ने बल-पूर्वक सती की रीति को दूर किया और हिन्दू विधवाओं के विवाह को नियमानुसार ठहराया।

अकबर का धर्म—अकबर के धार्मिक विश्वासों पर भिन्न भिन्न प्रभाव पड़ रहे थे, फैज़ी तथा अबुलफ़ज़ल उन्हें अपने ढंग पर ढालने का यत्न कर रहे थे। सम्भवतः उसकी हिन्दू रानियां भी अपना प्रभाव डाल रही थीं। अकबर ने धार्मिक शास्त्रार्थों की रीति भी जारी की हुई थी जिसमें प्रत्येक धर्म के विद्वान् भाग लेते थे। इसलिए वह अपने धार्मिक विचारों में उदार हो गया था। उसने दीनेइलाही के नाम से एक नया मत चलाया। यह मत भिन्न २ अनेक मतों का एक अद्भुत मिश्रण था।

अकबर के दरबार की कुछ प्रसिद्ध व्यक्तियां—हिन्दू पदाधिकारियों में सबसे प्रसिद्ध राजा भगवान दास, मानसिंह, टोडरमल

और बीरबल थे। अबुलफ़ज़ल और फैजी उसके पक्के मित्र थे। हिन्दी के कवि रहीम और दर्बारी गायक तानसेन अकबर की सभा के भूषण थे।

प्रश्न

१. गद्दी पाने के समय अकबर को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उन कठिनाइयों का उसने किस प्रकार सामना किया ?

२. यह बात कहाँ तक ठीक है कि मुग़ल साम्राज्य का स्थापक वास्तव में अकबर ही था ? उसकी विजयों का एक संक्षिप्त विवरण लिखो।

३. अकबर ने शासन-प्रबन्ध, कर-व्यवस्था और सैनिक-प्रबन्ध में क्या सुधार किए ?

४. बैरामख़ां, अबुलफ़ज़ल, टोडरमल, दीनेइलाही और तुलसीदास पर संक्षिप्त नोट लिखो।

५. पानीपत की दूसरी लड़ाई का संक्षिप्त वृतान्त लिखो।

Painting in Jahangir's time

A bullock cart (by Abdul Hasan Nadir-uz Zaman)
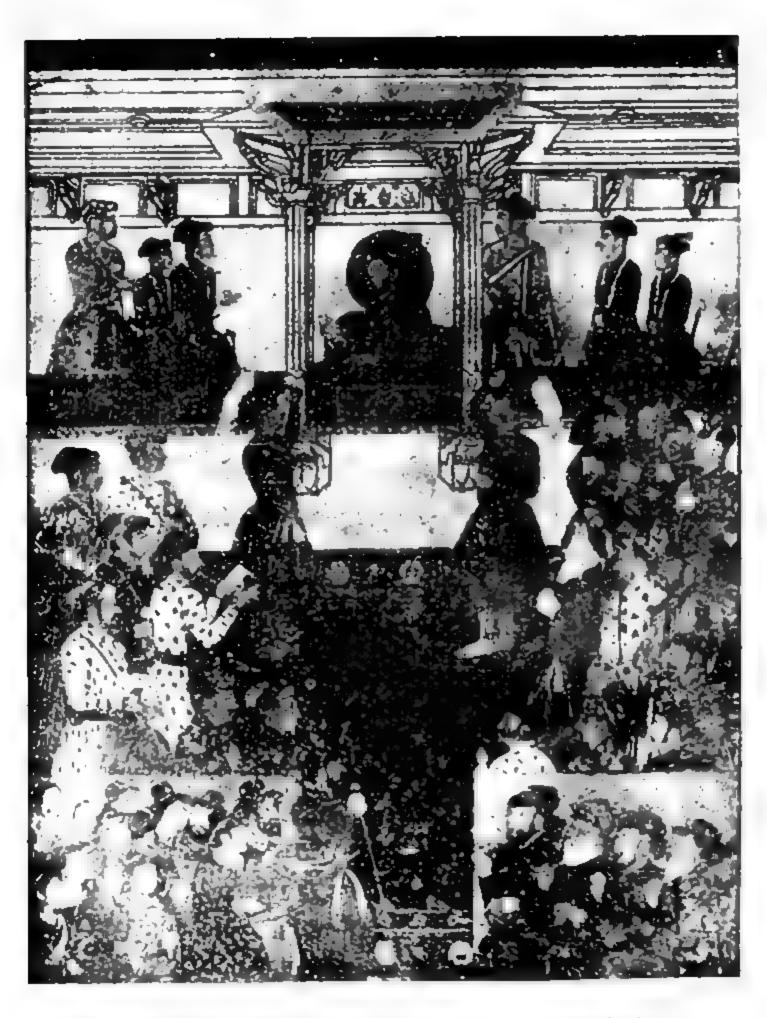
An European Embassy in the Mughal Court

जहांगीर [१६०५-१६२७]

महान् अकबर के बाद उसका एकमात्र जीवित पुत्र सलीम गद्दी पर बैठा और उसने अपना नाम जहांगीर रक्खा। अपने यशस्वी पिता से मिलान किए जाने पर वह मामूली-सा आदमी ठहरता है। पर फिर भी, जो कुछ साम्राज्य अपने पिता से प्राप्त हुआ था उसे उसने उसी प्रकार बनाए रक्खा। उसके पुत्र खुसरो ने विद्रोह किया तो उसने उसे बड़ी निर्दयता के साथ दबा दिया। कन्धार फ़ारस के शाह के हाथ में चला गया। उधर पुर्तगीज़ों की जलशक्ति भी बहुत बढ़ गई थी। मेवाड़ के राणा के साथ बहुत कुछ संघर्ष के बाद समझौता हो गया। अहमदनगर को—जिसने मलिक अम्बर के सुयोग्य नेतृत्व में विद्रोह किया और जो दो बार शाही सेना का मुंह फेरने में सफल हुआ था—अन्त में शाहजहां ने .फतह कर लिया और उसके मुखिया मलिक अम्बर की मृत्यु के साथ ही लड़ाई झगड़ा भी शान्त हो गया। जहांगीर के दरबार

शाहज़ादे खुसरो की बगावत

मेवाड़ के राना का आत्मसमर्पण

सर टामसरो

में हाकिन्स और सर टामसरो भी आए थे। सर टामसरो ने बादशाह से अंग्रेज़ों को सूरत में व्यापार करने का फ़रमान प्राप्त कर लिया।

नूरजहां—प्रसिद्ध नूरजहां एक सुन्दर और सुयोग्य फ़ारसी महिला थी। अकबर के जीवन-काल में जहांगीर उसके प्रेम में फंस गया था। उसका विवाह बंगाल के एक अफ़गान सरदार से हुआ था। पर जहांगीर के शासन-काल में उसका पति मारा गया—और कहा जाता है कि इसमें स्वयं बादशाह का हाथ था। नूरजहां का जहांगीर पर बेहद प्रभाव हो गया और एक प्रकार से

भारत की साम्राज्ञी

वही भारत का शासन करने लगी। इस शासन में वह अपने योग्य सम्बन्धियों से भी सहायता लेती थी। बादशाह शराब पीकर मस्त रहता था। उसने सल्तनत का काम काज अपनी सुयोग्य और चतुर मलिका के हाथों में सौंप दिया था।

सिक्ख धर्म में काया-पलट—जहांगीर के शासन-काल में एक बड़ी महत्वपूर्ण घटना हुई जिसका आने वाले इतिहास

गुरु अर्जुनदेव की मृत्यु

पर बेहद प्रभाव पड़ा। वह घटना थी अर्जुनदेव की मृत्यु। ये सिक्खों के पांचवें गुरु थे। उन्होंने अभागे राजकुमार ख़ुसरो को पनाह दी थी। बादशाह ने इस पर क्रुद्ध होकर उन पर भारी जुर्माना कर दिया। गुरु जी ने जुर्माना देने से इन्कार कर दिया जिस पर उनको मृत्यु-दण्ड मिला। सिक्ख धर्म के इतिहास में इस घटना ने उथल पुथल कर दी, क्योंकि इसी की सहायता से एक धार्मिक सम्प्रदाय एक प्रबल सैनिक शक्ति के रूप में बदल गया।

सिक्खों की बढ़ती—यह हम कह आए हैं कि गुरु नानक ने सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में सिक्ख सम्प्रदाय की नींव डाली। उनके बाद जितने गुरु हुए, सब योग्य और सदाचारी थे; अतः इस सम्प्रदाय का दिन पर दिन बल बढ़ता गया। अब सिक्खों की एक ऐसी शक्ति हो गई थी जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। गुरु अंगददेव ने गुरुमुखी लिपि बनाई जिसमें सिक्ख साहित्य लिखा है, गुरु रामदास ने सिक्खों का पवित्र तीर्थ-स्थान अमृतसर बसाया, गुरु अर्जुनदेव ने गुरुग्रन्थ का संकलन किया। गुरु अर्जुनदेव के साथ जो दुर्व्यवहार किया गया, सिक्खों के एक महान् शक्ति के रूप में बदले जाने का यह पहला कारण था।

गुरु अंगद, रामदास और अर्जुन

जहांगीर के अन्तिम वर्ष—नूरजहां की ईर्ष्या से प्रेरित होकर शाहजहां ने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। महावतखां ने उसका ज़ोर के साथ पीछा किया और युद्ध में उसे हार कर आत्म-समर्पण करना पड़ा। बाद को वह इस योग्य सेनापति से दक्षिण में मिल गया। इस वीर सेनापति ने भी नूरजहां से विमुख हो कर विद्रोह किया था।

महावत खां का विद्रोह

१६२७ में जहांगीर मर गया। लाहौर के पास शाहदरे में एक सुन्दर मक़बरे में उसकी क़ब्र बनी हुई है। यह कला में रुचि रखता था और उसने अपने समय में अनेक प्रसिद्ध चित्रकारों को—जिसकी सहायक नूरजहां थी—आश्रय दिया था। कविता में भी उसकी रुचि अच्छी थी। उसकी लिखी दैनिक व्यौरा की पुस्तक "तुज़के जहांगीरी" के नाम से प्रसिद्ध है। यह

फारसी साहित्य में उच्च कोटि की पुस्तक समझी जाती है।

५. शाहजहां (१६२८—१६५६)

शाहजहां ने अपने छोटे भाई शहरयार को बात की बात में हरा दिया। यह नूरजहां का सहायक था। उसने गद्दी पर बैठते ही अपने सारे पुरुष सम्बन्धियों को मरवा दिया। शाहजहां बुंदेले राजपूतों के विद्रोह को दबाने में सफल हुआ। उसने दक्षिण के सूबेदार और सेनापति खानजहां के विद्रोह को भी कुचल दिया। पुर्तगीज़ों का हुगली का किला भी, यद्यपि उसकी वीरता के साथ रक्षा करने की चेष्टा की गई, नष्ट कर दिया गया।

खानजहां लोधी का विद्रोह

अनेक षड्यन्त्रों के बाद अन्त में अहमदनगर भी राज्य में मिला लिया गया। बीजापुर और गोलकुण्डा के राज्यों ने विवश होकर दिल्ली की अधीनता स्वीकार की और कर देना आरम्भ किया। पर जब शाहजहां ने कन्धार और बलख पर पुनः अधिकार करने की चेष्टा की तो मुग़ल सेना की दुर्बलता साफ़ ज़ाहिर हो गई। शाहज़ादों ने अनेक बार धावे किए, पर सब व्यर्थ सिद्ध हुए।

अहमदनगर को मिला लिया गया

कन्धार पर अधिकार करने में विफलता

शासन-काल में समृद्धि—शाहजहाँ का शासन-काल मुग़ल समय का स्वर्ण-काल था। विदेशों से कोई आक्रमण नहीं हुआ। प्रजा में सुख तथा शान्ति थी और राजकोष धन से भरे हुए थे। राजपूत साम्राज्य के भक्त हो गए थे और देशभर में शायद ही कभी विद्रोह हुआ हो। शान्ति अटूट बनी रही।
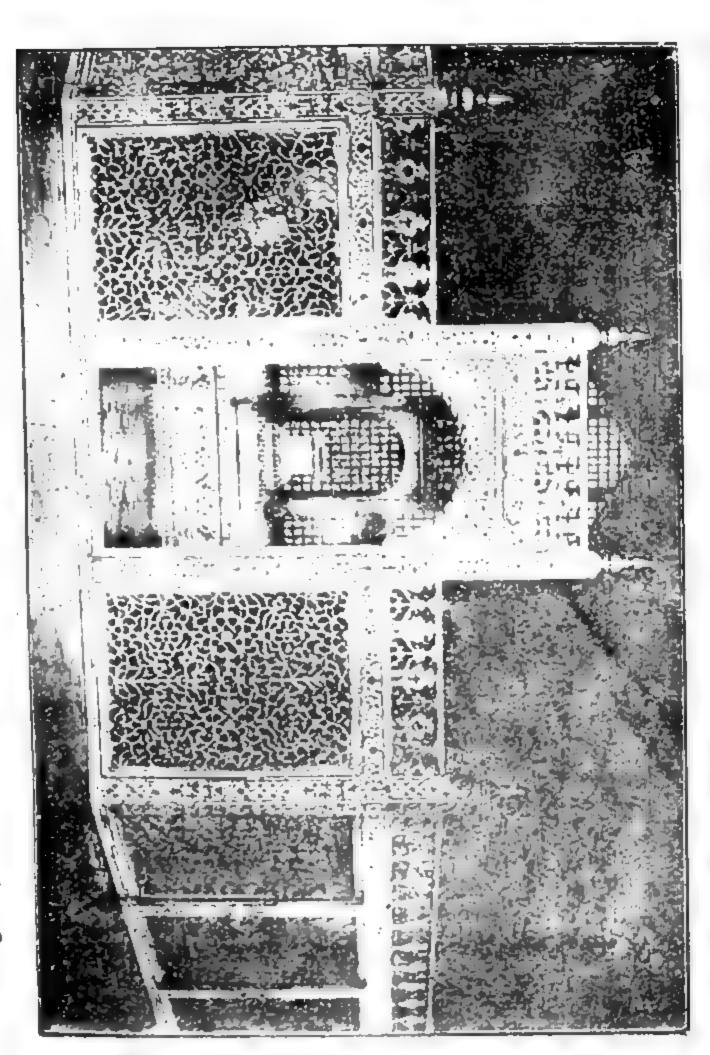
Marble screen enclosing the tomb of Shahjahan and his Queen.

The Taj Mahal
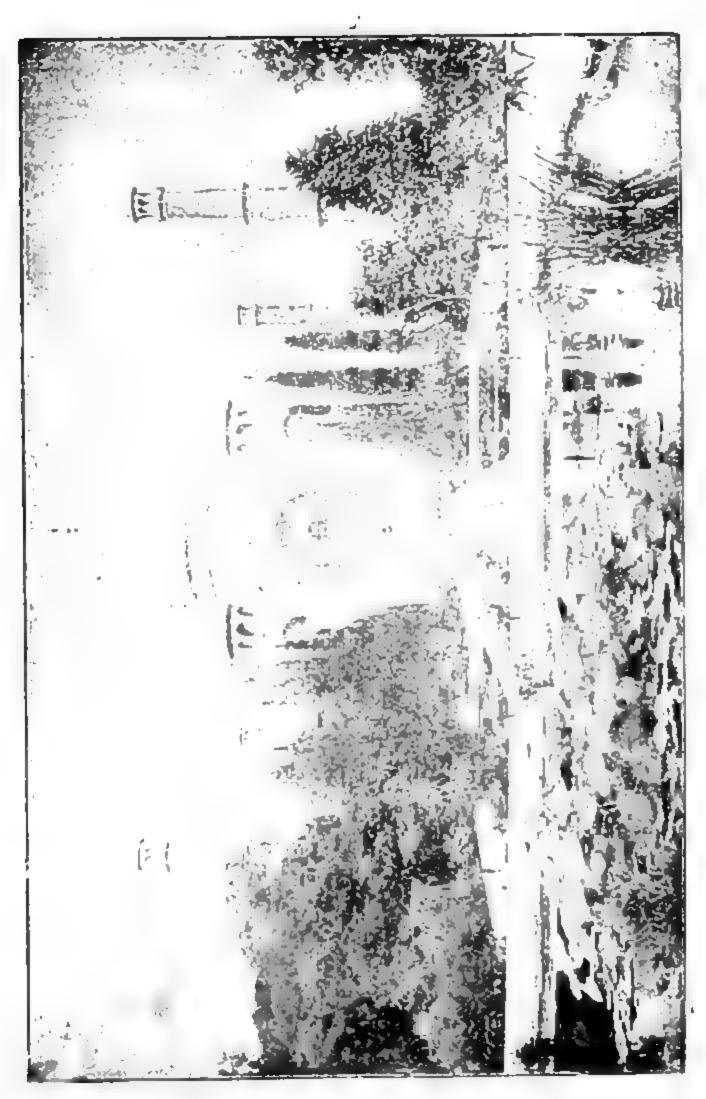
ताजमहल—शाहजहाँ भवन-निर्माण करने में बड़ी दिलचस्पी लेता था। आगरा और दिल्ली की अनेक ऐतिहासिक इमारतों के लिए उसका नाम विशेष उल्लेखनीय है। दिल्ली की जामा मस्जिद, लाल किला, आगरे की मोती मस्जिद, और सब से अधिक उल्लेखनीय ताजमहल—ये सब उसी के शासन-काल में बने थे। ताजमहल शाहजहाँ की प्यारी मलिका की कब्र के ऊपर बनवाया गया था। इस मलिका के चौदह सन्तानें हुई थीं।

ताजमहल १६३२ में आरम्भ हुआ और बाईस वर्ष बाद १६५२ में समाप्त हुआ। यह मकबरा बड़ा भव्य है और संसार के सात आश्चर्यों में समझा जाता है। शाहजहाँ ने प्रसिद्ध तख्ते ताऊस भी बनवाया जिस में पाँच करोड़ रुपये लगे। यह पलंग के आकार का था जिसके सोने के पाये थे। शामियाने को बारह खम्भे थामे रहते थे और हरएक खम्भे पर हीरे मोती आदि के बने मोर बैठाए गए थे। इसके बनने में सात वर्ष लगे। आजकल वह ईरान के बादशाह के पास है।

सारांश

जहांगीर—(१६०५ से १६२७ ई०) ज्योंही जहांगीर गद्दी पर बैठा उसके पुत्र खुसरो ने विद्रोह का झगड़ा खड़ा कर दिया परन्तु वह पकड़ा गया और उसे जेलखाने में ठोंस दिया गया और उसके साथियों को बड़ी निर्दयता से मार डाला गया।

इसकी लड़ाइयां—१. जहांगीर ने फिर राजपूतों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया और चिरकाल तक लड़ाई झगड़े के पश्चात मेवाड़ के राणा ने अधीनता स्वीकार कर ली।

२. शाहजहां ने मलिक अम्बर को जिसके अधीन अहमदनगर

का राज्य हो गया था हरा दिया।

नूरजहां—नूरजहां एक ईरानी स्त्री थी। उसका पिता अकबर के दरबार में एक उच्च पद रखता था। शाहज़ादा जहांगीर उस पर मोहित हो गया। जब वह बादशाह बन गया, तो उसने उसके पति शेर अफ़ग़ान को मरवा दिया और उसके साथ विवाह कर लिया। जहांगीर विलास-प्रिय था। उसने राज्य का सब काम काज नूरजहां पर छोड़ दिया।

शाहजहां का विद्रोह—नूरजहां अपने दामाद शाहज़ादे शहरयार का पक्षपात करती थी और उसे उत्तराधिकारी बनाना चाहती थी। शाहजहां ने विद्रोह किया परन्तु सेनापति महाबतख़ां से हार खाई। शीघ्र ही नूरजहां महाबतख़ां के भी विरुद्ध हो गई इसलिए वह शाहजहां के साथ मिल गया।

शाहजहां—(१६२७ से १६५८ ई०) शाहजहां ने शहरयार पर विजय पाई। शासन को शांतिपूर्वक चलाने के लिए उसने प्रायः सब सम्बन्धियों को मरवा डाला। उसने बुन्देला राजपूतों को, खान जहां लोधी को और हुगली के स्थान पर पुर्तगीजों को पराजित किया। अहमदनगर पुनः जीता गया। बीजापुर तथा गोलकुण्डा की रियासतों को भी अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

शाहजहां के अधीनस्थ देहात की अवस्था—शाहजहां का राज्य-काल एक उत्तम समय था। देश में शांति थी और लोग सुरक्षित थे। फिर भी हिन्दुओं के प्रति शाहजहां का वर्ताव अच्छा न था। राज्य के कई भागों में अकाल पड़ा था।

कला कौशल तथा वास्तु-कला—शाहजहां को भवन निर्माण का शौक था। देहली की जामा मस्जिद और लाल किला, आगरा की मोती मस्जिद तथा जगत् प्रसिद्ध ताज महल—ये सब भव्य भवन

उसी के राज्य-काल में बने थे। बादशाह ने पांच करोड़ रुपया की लागत से तख़्ते ताऊस को भी बनवाया था।

प्रश्न

१. जहांगीर की संक्षिप्त जीवनी लिखो और दिखाओ कि उसका चरित्र कैसा था?

२. नूरजहाँ, सर टामसरो और महाबतख़ां पर संक्षिप्त नोट लिखो।

३. शाहजहाँ के शासन-काल में क्या क्या सैनिक घटनाएं हुईं? उसके समय में मुग़ल वास्तु-कला की क्या क्या वृद्धि हुई?
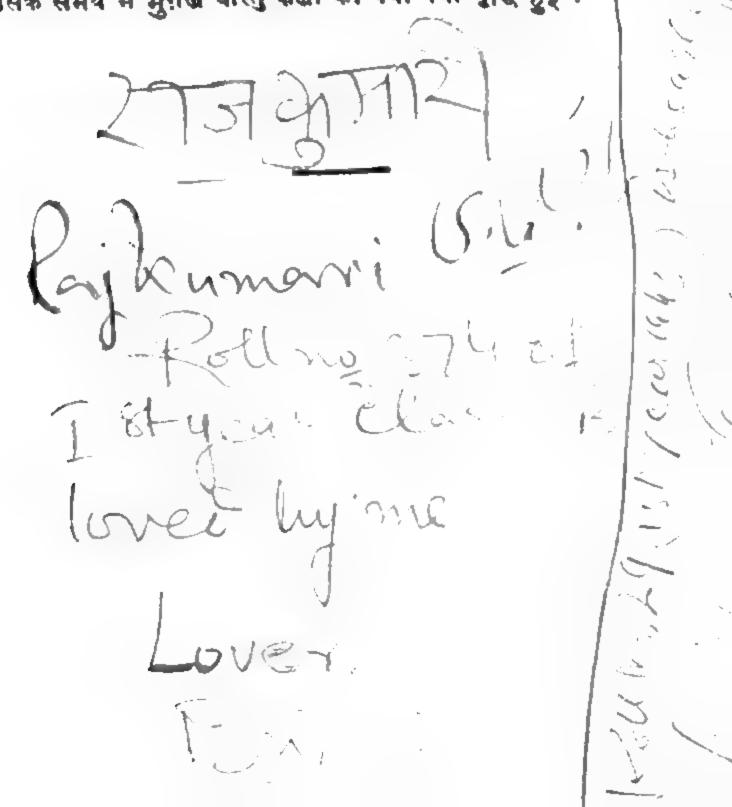
६. औरंगज़ेब (१६५८-१७०७)

राज्य-प्राप्ति के लिए युद्ध—१६५७ में ऐसा दिखाई देने लगा कि शाहजहाँ अब न बचेगा। उसके चार पुत्र थे जो विविध सूबों के सूबेदार थे और सब की अधीनता में बड़ी २ सेनायें थीं। बादशाह अपने सबसे बड़े पुत्र दारा को गद्दी देना चाहता था। दारा के धार्मिक विचार उदार थे, अतः वह सुन्नी फ़िर्के के मुसल्मनों में बदनाम था। शुजा बंगाल का शासक था। दक्षिण की बागडोर औरंगज़ेब के हाथ में थी और सब से छोटे लड़के मुराद को गुजरात का प्रांत मिला हुआ था। इन चारों भाइयों में दरबार के कट्टर विचार के लोगों की दृष्टि में औरंगज़ेब सब से अधिक प्रिय और योग्य था।

शाहजहाँ की बीमारी का समाचार मिलते ही शुजा बंगाल से दिल्ली पर अधिकार करने के लिए चल पड़ा। पर बनारस के निकट उसकी दारा के सबसे बड़े लड़के से मुठभेड़ हुई और उसे हराकर पीछे हटा दिया गया। औरंगज़ेब अधिक बलवान् शत्रु था। उसने योरूपियन गोलन्दाज़ों की एक सेना प्राप्त कर ली और

अपने छोटे भाई गुजरात के सूबेदार मुराद के साथ साम्राज्य की बांट के लिए राज़ीनामा कर लिया। उनकी सम्मिलित शक्ति ने शाही फ़ौज के एक शक्तिशाली हिस्से को कुचल डाला। यह युद्ध उज्जैन के निकट हुआ। इस शाही सेना के सेनापति मेवाड़ के राजा जसवन्तसिंह थे। इसके कुछ समय बाद १६५८ में दारा और उसके राजपूत मित्रों को आगरे के निकट समूगढ़ में बुरी तरह हरा दिया। औरंगज़ेब ने राजधानी पर अधिकार कर लिया और अपने पिता को महल में क़ैद कर दिया जहां वह आराम के साथ सात वर्ष क़ैदी रहा और फिर मर गया। मुराद शराब पीकर बेहोश पड़ा था, उसे गिरफ्तार करके जान से मार दिया गया। दारा का ज़ोर शोर के साथ पीछा किया गया और अन्त में एक विश्वासघातक ने उसे उसके विजयी भाई के सपुर्द कर दिया। उसे गन्दे कपड़े पहना कर शहर में घुमाया गया और फिर उसका सिर उतार लिया गया। शुजा का अराकान तक पीछा किया गया और फिर उसकी कोई खबर न सुन पड़ी। इस प्रकार औरंगज़ेब इस विशाल साम्राज्य का एकमात्र स्वामी रह गया।

समूगढ़

औरङ्गज़ेब की सफलता।

औरंगज़ेब का आचरण—जिस समय औरंगज़ेब गद्दी पर बैठा तो उसकी आयु चालीस वर्ष की थी। वह व्यक्तिगत जीवन में पवित्र और साधु चरित्र का था। वह अपनी धुन का बड़ा पक्का, कूटनीति में बड़ा सिद्धहस्त और बड़ी शान्ति तथा समझ के साथ सेना संचालन करना जानता था। वह अपने वंश के सबसे अधिक वीरों

धार्मिक-कट्टरता

में से था। वह बड़ा कट्टर और संकीर्ण-हृदय मुसल्मान था। उसके जीवन में यही खास बात थी कि वह इस्लाम का सच्चा भक्त था। यही भक्ति उसे अन्य धर्मों के प्रति कठोर बना देती थी। उसने एक आदर्श सुन्नी मुस्लिम सम्राट् बनाने के लिए कुछ उठा न रक्खा। पर उसका शासन-काल मुग़ल साम्राज्य के लिए शोचनीय था।

उसने अपने शत्रुओं को कुचलने की जितनी कोशिशें कीं सब बेकार साबित हुईं। वह अपने आलसी सिपाहियों में वीरता और जोश का मन्त्र न फूँक सका।

उसकी धार्मिक नीति—मुग़ल शासक नम्र और सहृदय थे और अपनी हिन्दू प्रजा पर अत्याचार नहीं करते थे। मुग़ल साम्राज्य का प्रवर्त्तक बाबर बड़ा दूर-दर्शी और उदार था। वह धर्म के नाम पर अत्याचार करने का पक्षपाती नहीं था। उसका पोता अकबर तो परले सिरे का सहिष्णु था। उसने नस्ल और धर्म के भेद-भाव को नष्ट कर दिया, जज़िया कर उठा दिया और अपनी नौकरियों में हिन्दू-मुसल्मान, दोनों को बराबर जगह दी। राजपूतों के साथ विवाह सम्बन्ध करके उसने उस भेद-भाव को जड़ से उखाड़ फेंकने की कोशिश की। जहांगीर और शाहजहां भी उसकी ही नीति का पालन करते रहे और यह नीति हमेशा के लिए निश्चित और अनिवार्य सी दिखाई देने लगी।

मुग़ल शासक अपने पूर्ववर्ती शासकों से अधिक सहिष्णु थे

हम पहले ही कह चुके हैं कि हिन्दू शासन-कार्य में मुसल्मानों के साथ बहुत दिनों से सहयोग देते आए थे। वे साम्राज्य के शत्रुओं के विरुद्ध मुसल्मानों के कन्धे से कन्धे मिला कर

हिन्दुओं को राज कार्य में भाग दिया गया

लड़े। उन्हें उच्च से उच्च पदों पर रक्खा गया और वे अपने मुस्लिम पड़ोसियों के साथ बराबर की हैसियत से रहने लगे। उनमें एक नवीन भावना काम करने लगी। यह कहा जा सकता है कि तीसरे, चौथे और पांचवें सम्राट् के शासन-काल में ही राजपूत शक्ति का वास्तविक पुनरुत्थान हुआ और मराठी तथा सिक्ख शक्ति का जन्म हुआ।

राज्य अधिकार की लड़ाई में हिंदुओं का भाग

हिन्दुओं ने राज्य के उत्तराधिकार के लिए युद्ध में दारा का साथ दिया। औरंगज़ेब क्रोधित हुआ। वह वैसे ही असहिष्णु मुसलमान दल से सम्बन्ध रखता था। उसके धर्मोन्माद ने उसे एक कठोर नीति अपनाने को बाध्य किया और इस नीति से उस बढ़िया साम्राज्य की जड़ खोखली हो गई जिसे अकबर की प्रतिभा ने स्थापित किया था। उसने उस साम्राज्य को नष्ट करने के लिए नये नये यन्त्र आविष्कार किए। उसने अपने महान् पितामह की धार्मिक सहिष्णुता की नीति को बदल दिया और सारे भारत को इस्लाम धर्म के विधानों को मानने के लिए मजबूर करने के काम में ध्यान लगाया। उसने एक दम अपने दफ्तर से सारे हिन्दू मुहर्रिरों को बर्खास्त कर दिया। हिन्दू पाठशालाएँ बन्द कर दी गईं। मथुरा और बनारस के प्रसिद्ध मन्दिरों को—उनकी जगह मस्जिदें बनाने के लिए—मिट्टी में मिला दिया गया। नारनौल के सतनामी

सतनामी विद्रोह

साधुओं ने विद्रोह किया, पर उनका बड़ी निर्दयता के साथ दमन कर दिया गया। जज़िया कर फिर

लगा दिया गया। अभागे पीड़ितों ने उसे हटा लेने की प्रार्थना करने के लिए शाहनशाह का मार्ग रोक लिया किन्तु उन्हें हाथी के पैरों तले कुचल दिया गया। सिक्ख गुरु तेगबहादुर को उनके इस्लाम स्वीकार न करने पर अनेक कष्ट देकर मार डाला गया। उनके वीर पुत्र गुरु गोविन्दसिंह ने अपने वीर पंजाबी अनुयायियों को एकत्र किया और मुग़ल अधिकारियों को फिर कभी चैन न लेने दिया। बुन्देलखण्ड के मन्दिरों को नष्ट करने की चेष्टा की गई और इस पर बुन्देल राजा छत्रसाल को भी मुग़लों के विरुद्ध देशभक्त बुन्देलों को संगठित करने का अवसर मिला। उसे बराबर सफलता मिलती गई। उसने एक के बाद दूसरी विजय प्राप्त की और अपनी जन्म भूमि को पूर्ण स्वाधीन करके छोड़ा।

राजपूतों के साथ लड़ाई—काबुल में राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी रानी अपने शिशु पुत्र और थोड़े से साथियों के साथ राजधानी में पहुँची। औरंगज़ेब ने बच्चे को मुसल्मान बना कर उसका पालन पोषण करने की ठानी और उनको कैद करने के लिए सेना भेजी। ऐसे संगीन मौके पर अपनी रक्षा करते राठौरों के साफ बच कर निकल जाने की मिसाल राजपूतों के इतिहास में भी शायद ही कोई हो। उनके सेनापति दुर्गादास थे जो इस वीर जाति के इतिहास के परम वीर और परम उदार व्यक्तियों में से एक थे। अब भी मारवाड़ के घर घर में इनका नाम प्रति दिन लिया जाता है।

राजपूत विरुद्ध हो गए

"जननी शुत इस्यो जणे जिस्यो दुर्गादास"
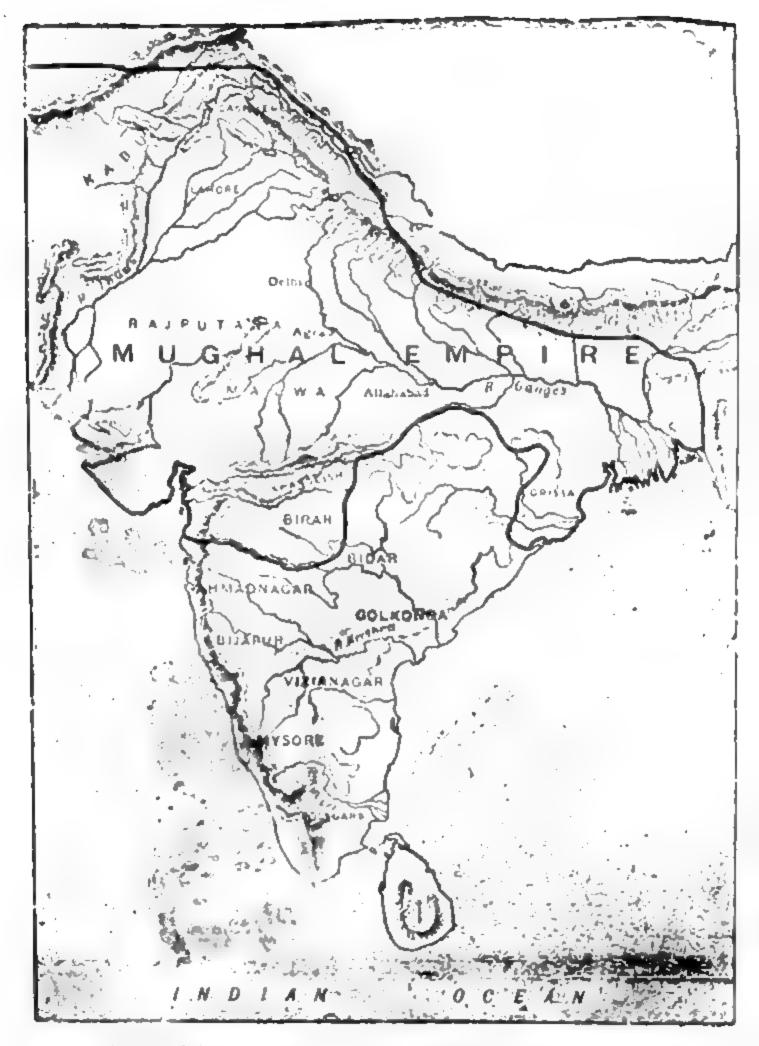
The Mughal Empire under Aurangzeb

Aurangzeb

इस प्रकार अब एक ऐसा तूफान उठ खड़ा हुआ जिसका अन्त औरंगज़ेब के शासन-काल के अन्त तक न हुआ। मेवाड़ के राजा रामसिंह ने राठौरों को एकत्र कर लिया। सारे राजपूताने में आग भड़क उठी। शाहनशाह का एक पुत्र विद्रोह करके राजपूतों के साथ जा मिला। औरंगज़ेब ने इस नाज़ुक हालत से अपने आपको एक जाली खत लिखकर बचाया। अन्त में १६८१ में एक सन्धि हुई। पर अब तक जो राजपूत मुग़लों के शक्तिशाली मित्र रहे थे हमेशा के लिए शत्रु हो गए। बादशाह को अपने दक्षिण के शत्रुओं के साथ युद्ध में जुटना पड़ा तो उसे राजपूतों से बहुत कम सहायता मिली। मानों उसका दाहना हाथ कट चुका था।

उसकी दक्षिणी लड़ाइयाँ—इसी बीच में दक्षिण में मामूली-सी शक्तियों के योग से एक नई शक्ति का जन्म हो चुका था। शिवाजी नामक एक बहादुर और साहसी योद्धा ने बीजापुर के राज्य में से एक पहाड़ी राज्य कायम कर लिया। उसने अनेक बादशाही सेनापतियों के कौशल को व्यर्थ कर दिया, सूरत को लूटा और हाजियों का एक जहाज तक लूट डाला। एक अवसर पर राजा जयसिंह उसे समझा बुझा कर दिल्ली में औरंगज़ेब के दरबार में ले गया। वहां उसके साथ जान बूझ कर अपमान-पूर्ण व्यवहार किया गया। "राजनैतिक भूल का इससे बड़ा उदाहरण शायद ही कोई दूसरा होगा।" शिवाजी चालाकी से भाग कर दक्षिण पहुँच गया और इसके बाद वह एक के बाद दूसरी विजय करता रहा। १६८० में वह अचानक बीमार पड़ गया। इस महान् सेनापति और शासक की मृत्यु के

शिवाजी की अधीनता में मराठे

बाद भी उसकी आत्मा इसके बनाए राष्ट्र में अपना काम करती रही। अब औरंगज़ेब ने अपने नए दुश्मन मराठों और बीजापुर तथा गोलकुण्डा की शिया सल्तनतों को कुचलने का पक्का इरादा कर लिया।

पर ये शिया रियासतें मराठों की बढ़ती में बहुत कुछ बाधक थीं। उन्हें नष्ट करना राजनैतिक भूल थी। १६८६ में बीजापुर दुर्ग के निवासियों को कड़ा घेरा डाल कर फ़ाकाकशी पर मजबूर कर दिया गया और इस प्रकार उन्हें आत्म-समर्पण करना पड़ा। एक वर्ष बाद धोखे और रिश्वत से गोल-कुण्डा पर भी विजय प्राप्त कर ली गई।

बीजापुर और गोलकुण्डा की रियासतों का पतन

शिवाजी के वीर किन्तु आचरणहीन पुत्र शम्भु जी को उसके परिवार के साथ अचानक बन्दी कर लिया गया। उसके सामने इस्लाम धर्म स्वीकार करने का प्रस्ताव रक्खा गया पर उसने घृणा के साथ बड़े कटु शब्दों में इसे अस्वीकार कर दिया और उसे निर्दयता से क़त्ल किया गया। मराठों के देश को रौंद डाला गया। उनके क़िलों और राजधानी पर अधिकार कर लिया गया। बादशाह को पूर्ण विश्वास था कि अब मराठा शक्ति का अन्त हो गया है। पर उसने इस जाति की लड़ने की शक्ति का अन्दाज़ा लगाने में सब से अधिक भूल की थी। उसको अपनी भूल जल्दी ही मालूम हो गई।

मराठों के राजा की हत्या के बाद १७ वर्ष तक भयंकर संघर्ष जारी रहा और अन्त तक बादशाह को सफलता नसीब न हुई। इस महान् अस-

मराठों को कुचलने में असफलता

फलता का क्या कारण हो सकता है ?

विलासिता के जीवन ने मुग़ल सेना की वीरता को नष्ट कर दिया था। वह युद्ध के मैदान में भी एक शानदार जलूस जैसी दिखाई देती थी। उधर मराठों का सारा देश निराशा में भी वीरता के साथ तलवार हाथ में लेकर उठ खड़ा हुआ था। भारी मुग़ल घुड़सवार सेना उन मराठों के मुकाबले की नहीं थी, जो आराम और सुख से अपरिचित थे और अपने तेज़ घोड़ों पर बैठ कर जुआर की रोटियां बगल में दबा कर युद्ध के लिए चल पड़ते थे। वे आंधी की तरह शत्रु के सामने से भाग जाते और जब मौका देखते तभी लड़ते थे। वे बिजली की तरह दुश्मनों के तम्बुओं पर टूट पड़ते, बड़ी भारी हानि पहुँचाते और शत्रु के होश में आने से पहले ही आंखों से ओझल हो जाते थे। उनके ऊजड़ देश, नदियों की बाढ़, अकाल और संक्रामक रोगों ने उनकी और भी सहायता की। इसी प्रकार युद्ध का सिलसिला जारी रहा जिसमें छोटी छोटी विजयों के होने पर भी मुग़ल सेना को बड़ी भारी हानियाँ उठानी पड़ीं।

मुग़ल सेना में शक्ति का अभाव

मराठों की छापा मारने की नीति

अन्त में १७०६ में बादशाह ने अपनी पूरी असफलता देखी। अब उसकी सेना एक असंयत गिरोह थी। उसका मान सम्मान बहुत गिरा हुआ था। राज्य की आर्थिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। औरंगज़ेब का शरीर वृद्धावस्था और चिन्ताओं से ढीला पड़ गया था। वह अहमदनगर को लौट आया। उसका विजय स्वप्न भङ्ग हो गया था और उसके हृदय में विषाद भरा हुआ था। बस, अब

मृत्यु

उसके लिए मरने के सिवाय और कुछ नहीं रह गया था। नैपोलियन कहा करता था—"मुझे बर्बाद करना स्पैनिश फोड़े का काम था।" दक्षिणी फोड़े ने औरंगज़ेब को बर्बाद किया था। वह १७०७ ई० में नब्बे वर्ष की आयु में परलोक सिधार गया।

सारांश

औरंगज़ेब (१६५८ से १७०७)

राज्य प्राप्ति के लिए युद्ध—१६५७ ई० में शाहजहां बहुत बीमार हो गया और उसके चारों पुत्रों के बीच राज्य प्राप्ति के लिए लड़ाई छिड़ गई। दारा सब से बड़ा था, शुजा उस से छोटा और बङ्गाल का गवर्नर था, उसका तीसरा पुत्र औरंगज़ेब दक्षिण का शासक था। मुराद सब से छोटा था और वह गुजरात का हाकिम था, दारा के बेटे ने शुजा को पराजित किया, मुराद तथा औरंगज़ेब की संयुक्त सेना ने दारा को समूगढ़ के स्थान पर पराजित किया। मुराद को कैद कर लिया गया। औरंगज़ेब राजसिंहासन का मालिक बन गया।

औरंगज़ेब का शील स्वभाव—औरंगज़ेब व्यक्तिगत जीवन में पवित्रात्मा और संयमी था, परन्तु वह प्रत्येक बात को मुसलमानी दृष्टिकोण से देखता था और दूसरे मतों के अनुयाइयों से पक्षपात-पूर्वक बर्ताव करता था।

औरंगज़ेब की धार्मिक नीति—औरंगज़ेब अपने विचारों में अकबर के समान उदार नहीं था। इसलिए हिन्दुओं ने कई बार हानि पहुंचाई, उन्होंने दारा की सहायता की। इसके राज्य-काल में सतनामी साधुओं ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। औरंगज़ेब ने हिन्दुओं की मूर्तिपूजा के विरुद्ध आज्ञा पत्र निकाल दिए। कई मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट

कर दिया और पुनः जज़िया लगा दिया। उसने जसवन्त के लड़कों को पकड़ने का यत्न किया जिस से राजपूत इसके विरुद्ध हो गए और लड़ाई के लिए तय्यार हो गये।

औरंगज़ेब की दक्षिण की लड़ाइयां—दक्षिण में मराठों की शक्ति शिवाजी के नेतृत्व में दिन प्रति दिन बढ़ रही थी, औरंगज़ेब उनके विरुद्ध लड़ा। यद्यपि वह किसी अंश में सफल हुआ परन्तु मराठों को कुचल न सका। इसके अतिरिक्त गोलकुण्डा और बीजापुर की रियासतों के मुगल साम्राज्य में सम्मिलित हो जाने के कारण मराठों की रुकावट दूर हो गई थी। मुगल सेना अयोग्य थी और वह मराठों की अनियमित सेना का मुकबला न कर सकी। औरंगज़ेब १७०७ में निराशा की अवस्था में मृत्यु को प्राप्त हुआ।

प्रश्न

१. शाहजहां की बीमारी में उसके पुत्रों में जो झगड़े हुए वे उनका संक्षिप्त विवरण लिखो।

२. शासक और व्यक्ति की दृष्टि से औरंगज़ेब के आचरण का वर्णन करो।

३. अकबर और औरंगज़ेब के शासन-कालों में मुगल साम्राज्य के इतिहास में राजपूतों का क्या स्थान रहा?

४. दक्षिणी फोड़े ने औरंगज़ेब को बर्बाद किया—इसे प्रमाणित करो।

५. अकबर के साथ औरंगज़ेब की तुलना करो।

६. औरंगज़ेब मराठों को कुचलने में क्यों असफल रहा?

७. सतनामी, शिवाजी, दुर्गादास, दारा तथा मराठा इन पर संक्षिप्त नोट लिखो।

मुग़ल साम्राज्य का पतन
[१७०७-१७६१]

कारण—औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद साम्राज्य का विध्वंस बड़ी शीघ्रता से होने लगा। पचास वर्ष के भीतर अकबर की प्रतिभा द्वारा खड़ा किया गया विशाल साम्राज्य-भवन नष्ट होकर गिर पड़ा। बाद के मुग़ल शासकों के महत्वहीन शासन का ज़िक्र करना बेकार-सा है। इस समय का ऐतिहासिक महत्व दिल्ली के दरबार से नहीं, सिक्ख और मराठा शक्ति के उत्थान से सम्बन्ध रखता है। हम यहाँ अत्यन्त संक्षेप में मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारणों के विषय में केवल दो चार बातें बताएँगे।

मुग़ल सेना में शक्ति का अभाव

मुग़लों की सैनिक-शक्ति के ह्रास का पता तो उसी समय लगना आरम्भ हो गया था जब शाहजहाँ कन्धार को वापस न जीत सका। मराठा-शक्ति के विरुद्ध औरंगज़ेब की परेशानी से उसकी सेना की कमज़ोरी ही साबित होती है।

औरंगज़ेब की धार्मिक असहिष्णुता से वीर राजपूत उसके

औरंग़ेब की असहिष्णुता की नीति

शत्रु बन गए थे। इस असहिष्णुता की ही बदौलत हिन्दुओं में विदेशी शासकों के विरुद्ध भावनाओं ने ज़ोर पकड़ा। उसकी बेहद संशयशीलता के कारण उसके उत्तराधिकारी राजनीति के हुनर में शिक्षित न हो सके और वे सल्तनत की बड़ी-बड़ी ज़िम्मेदारियों के अयोग्य प्रमाणित हुए।

अयोग्य उत्तराधिकारी

जिस समय वीर मराठे तेज़ी के साथ ताक़त पकड़ते जा रहे थे और मुल्क की सल्तनत पर क़ब्ज़ा करने की फ़िक्र में थे, उस समय यूरोपवासी, जिनके समुद्री मार्ग में कोई मुकाबले पर न था, समुद्र तट पर धीरे-धीरे, पर निश्चयात्मक रूप से अधिकार करते जा रहे थे। लगातार बाहरी हमलों से साम्राज्य को गहरे आघात पहुँचे। उधर स्वार्थी मुसलमान दरबारी मुल्क भर में अपनी रियासतें कायम करने की फ़िक्र में थे। विरोधी दलों के हाथ में मुग़ल सम्राट् खिलौना मात्र रह गए थे। उनकी शक्ति बड़ी शीघ्रता से नष्ट हो रही थी। अन्त में शक्ति का प्रतिबिम्ब मात्र रह गया।

विदेशी आक्रमण

स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना

स्वतन्त्र राज्य—साम्राज्य के विध्वंस के परिणाम-स्वरूप अनेक नये राज्य कायम होने लगे। निज़ामुलमुल्क ने वर्तमान हैदराबाद रियासत की नींव डाली। सआदतअली खां ने अवध में और अलीवर्दीखां ने बिहार और बंगाल में स्वतन्त्रता प्राप्त कर ली थी।

बंगाल, अवध और दक्षिण

दिल्ली के दरबार पर बहुत दिनों तक दो सैयद भाइयों का प्रभुत्व रहा जो बादशाह बनाने वालों

बादशाह बनाने वाले

(King-Makers) के नाम से प्रसिद्ध हैं। वे जिसे चाहते गद्दी पर बिठाते और जिसे चाहते उतारते पर शासन की बागडोर अपने हाथों में रखते थे। मुहम्मदशाह के शासन-काल में उनके हाथों से यह ताक़त छिन गई।

नादिरशाह का हमला—१७३६ में दिल्ली पर फ़ारस के बादशाह नादिरशाह ने हमला किया और थोड़े से विरोध के बाद वह दिल्ली में जा पहुँचा। वह वहाँ कोई दो महीने तक रहा और बहुत-सी दौलत इकट्ठी करके वापस लौट गया। नादिरशाह का हमला दिल्ली निवासियों के लिए भारी विपत्ति का समय था। शहर में एक अफ़वाह फैल गई थी कि नादिरशाह मारा गया; इस पर कुछ सिपाहियों पर हमला कर दिया गया और उन्हें मार डाला गया। दूसरे दिन प्रातः क्रुद्ध विजेता ने अपनी तलवार म्यान से बाहर निकाल ली और संकेत पाकर उसके सिपाहियों ने क़त्ले आम करना शुरु कर दिया। हत्या-काण्ड नौ घण्टे तक जारी रहा।

अहमदशाह अब्दाली के हमले—नादिरशाह की मृत्यु के बाद उसके साम्राज्य का अफ़गानिस्तान का हिस्सा अहमदशाह अब्दाली के हाथ में आया जिसने १७४८ और १७६४ के बीच में भारत पर अनेक बार हमले किए। उसका सबसे महत्वपूर्ण हमला १७६०—६१ में हुआ जब कि उसने पानीपत की तीसरी लड़ाई में मराठों को हराया था।

सिक्खों में परिवर्तन—सिक्खों की बढ़ती—जहाँगीर के ज़माने में गुरु अर्जुनदेव की हत्या ने उनके वीर अनुयाइयों पर आत्म-रक्षा के लिए हथियार ग्रहण करने को बाधित किया। गुरु अर्जुनदेव के बाद गुरु

गुरु हरगोविन्द

हरगोविन्द का ज़माना आया। यही पहले गुरु थे जिन्होंने युद्ध-कार्य्य में भाग लिया। उन्हें १२ वर्ष तक ग्वालियर के किले में राजनैतिक क़ैदी के रूप में नज़रबन्द रक्खा गया। वहाँ से छुटकारा पाने के बाद उन्होंने मुग़ल अफ़सरों को अनेक स्थानों पर शिकस्त दी। उनके दूसरे पुत्र तेगबहादुर औरंगज़ेब की नीति के शिकार हुए।

तेगबहादुर

गुरु गोविन्दसिंह—इस प्रकार सिक्खों का नेतृत्व उनके पुत्र गोविन्दसिंह को सौंपा गया जो अभी पन्द्रह वर्ष के भी न हुए थे। नवयुवक गुरु ने गद्दी पर बैठते ही मुस्लिम राज्य के विरुद्ध विद्रोह करने की शपथ ली। इस कर्मशील नेता के नेतृत्व में सिक्ख धर्म ने एक गौरवशाली रूप धारण कर लिया।

गुरु गोविन्दसिंह अपने साधनों को संगठित करने के लिए चुपचाप पहाड़ों में चले गए। उन्होंने अपने शिष्यों (सिक्खों) का ध्यान खेती किसानी की ओर से तलवार की ओर फेरा और अपने शत्रुओं के विरुद्ध धर्म-युद्ध करने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्होंने केश आदि चिन्हों और अन्य सुधारों से सिक्खों में सैनिक भ्रातृ-भाव उत्पन्न कर दिया और उनके हृदयों में विश्वास हो गया कि उन्होंने विजय करने के लिए ही जन्म लिया है।

हल छोड़ कर तलवार पकड़ना

जब औरंगज़ेब ने अपनी असहिष्णु नीति से अपनी हिन्दु प्रजा को क्रुद्ध कर दिया था और स्वयं चुनी हुई सेना लेकर वह दक्षिण को चला गया था, गुरु गोविन्दसिंह ने पंजाब के पहाड़ी राजाओं और सूबेदारों की मुग़ल सेना के साथ युद्ध करना आरम्भ कर दिया। चमकौर के किले की बहादुरी के साथ रक्षा करने के

बाद उनके दो लड़के मारे गए और दो पकड़े गए। उन लड़कों की नसों में भी अपने पूर्वजों का ही रक्त प्रवाहित था, इसलिए उन्होंने मुसल्मान बनने की शर्त पर प्राण बचाने की बात को घृणा के साथ अस्वीकृत कर दिया। फलतः उन्हें जीवित सरहिंद की दीवार में चुन दिया गया। इसके बाद गुरु जी दक्षिण की ओर चले गए जहाँ १७०८ में दो पठानों ने उनके पेट में छुरा भोंक कर उन्हें मार डाला।

मृत्यु

बंदा बहादुर—(१७०८–१७१६) गुरु गोबिन्दसिंह सिक्खों के अन्तिम गुरु थे। अपनी मृत्यु के पहले वह सिक्खों का नेतृत्व बन्दा बैरागी को सौंप गए थे। बन्दा युद्ध में बड़ा निपुण था। इसने सिक्ख सेना एकत्र की और पंजाब के अनेक भागों पर अपना अधिकार कर लिया। सरहिंद के सूबेदार से भयंकर युद्ध करने के बाद उसने शहर लूटा और गुरु गोबिन्दसिंह के लड़कों की हत्या का बदला लेने के लिये मुसल्मान नागरिकों का बेरहमी के साथ कत्ले आम किया। उसने अपने अविवेकपूर्ण आचरण से अधिकांश सिक्ख सेना को अपने विरुद्ध कर दिया, जो उसका साथ छोड़ कर चली गई और उसे कुचलने में मुग़ल सेना की सहायता करने लगी। घोर युद्ध के बाद बंदा बहादुर को उसके १००० साथियों के साथ पकड़ लिया गया और दिल्ली के मुग़ल बादशाह फरुखसय्यर की आज्ञा से अनेक कष्ट देकर मार डाला गया।

बंदा ने बदला लिया

इसके बाद सिक्खों पर जो निर्दयतापूर्ण अत्याचार होने शुरु हुए उनसे वीर खालसे दबे नहीं। उनकी संख्या बढ़ती गई और उनकी शक्ति में वृद्धि होती गई और एक दिन ऐसा आया जब

रणजीतसिंह ने बहुत-सी छोटी-छोटी मिस्लों को मिलाकर एक शक्तिशाली राज्य कायम कर दिया।

मुग़ल सभ्यता——मुग़ल साम्राज्य का प्रकरण समाप्त करने से पहले मुग़ल शासन-काल में भारतीय सभ्यता का वर्णन करना उचित है।

शासन——मुस्लिम शासन एक ऐसा विदेशी शासन था जो बड़ी सेनाओं की सहायता से कायम किया और रक्खा गया था। बादशाह को पूर्ण अधिकार प्राप्त थे और उसके दरबार में विभिन्न पदों के अनेक सैनिक जागीरदार रहते थे। उत्तराधिकार के सम्बन्ध में कोई निर्धारित नियम नहीं था और गद्दी पर बैठने का तलवार के द्वारा फ़ैसला किया जाता था। मुसलमानों में जो उच्च श्रेणी से सम्बन्ध रखते थे, वे विभिन्न नस्लों का अजीब मिश्रण थे। मुसल्मान बादशाह का आदर्श था कि उलमाओं की सहायता से इस्लाम का कानून व्यवहार में लावे। यह कहना अनावश्यक है कि अनेक मुसल्मान बादशाहों ने इस कानून को पूरी तरह व्यवहार में लाने का——विशेष कर ग़ैर मुस्लिम जनता के सम्बन्ध में, कभी प्रयत्न नहीं किया। अपनी उदार नीति की बदौलत अकबर पुराने विचारों के मुसल्मानों की दृष्टि में गिर गया था, जब कि औरंगज़ेब ने एक मुसल्मान बादशाह के आदेश को प्रकृत रूप देने की चेष्टा करने में अपने आपको और अपने साम्राज्य को नष्ट कर दिया। सैनिक और शासन व्यवस्था में अकबर की नीति का ही मुख्यतः अनुकरण किया जाता था, यद्यपि बाद के निर्बल शासकों के हाथों में हुकूमत की बागडोर ढीली पड़ गई थी।

साहित्य——अधिकांश बादशाह साहित्य और कला के बड़े

संरक्षक थे। अकबर दरबार विद्वानों और कलाविदों को आश्रय देता था। ऐतिहासिक साहित्य का बड़े परिश्रम से अनुशीलन किया जाता था और उर्दू भाषा ने बड़ी तरक्की कर ली थी। चित्र-कला और वास्तुकला में बड़ी उन्नति हुई थी।

धर्म---इसमें कोई सन्देह नहीं कि समय-समय पर मुसल्मानों ने भारत में अनेक मनुष्यों को तलवार के ज़ोर से या राज-नैतिक और आर्थिक सुविधाएँ देकर मुसल्मान बनाया था। पर धर्म परिवर्तन के मामले में अन्य प्रभावों ने अधिक असर किया। अनेक पीरों और बेशुमार फ़क़ीरों के चारों ओर अनेक अनुयायी घिरे रहते थे। हिन्दुओं में भक्ति मार्ग बहुत प्रसिद्ध हो गया था और जन साधारण का धर्म बन गया था।

व्यापार—लम्बी यात्रा के साधन अच्छे नहीं थे। सफर करना अनेक स्थानों पर ख़तरे से खाली नहीं था, और जगह-जगह की चुँगियों से व्यापार में बड़ी क्षति पहुँचती थी। विदेशी व्यापार लगभग सारा योरूपियनों के ही हाथों में था।

सारांश

मुग़ल साम्राज्य के पतन के कारण—(१) मुग़लों की सेना की अयोग्यता, (२) औरङ्ग़ज़ेब का धार्मिक पक्षपात, (३) औरङ्ग-ज़ेब के दुर्बल उत्तराधिकारी, (४) सिक्खों, मराठों और यूरोपीय शक्तियों की बढ़ती, (५) नादरशाह तथा अहमदशाह अब्दाली जैसे अन्य देशीय आक्रमणकारियों के हमले और (६) बङ्गाल, अवध तथा हैदराबाद जैसे स्वतन्त्र राज्यों की स्थापना।

सिक्खों का अभ्युदय—सिक्खों के नवें गुरु तेग़बहादुर औरङ्ग़ज़ेब के हाथों मारे गए, इसके पीछे गुरु गोबिन्द सिंह गद्दी

पर बैठे, उन्होंने अपने अनुयाइयों का ध्यान हल से हटाकर तलवार की ओर आकर्षित किया। बन्दा बैरागी ने उनके काम को जारी रक्खा। परन्तु वह पकड़ लिया गया और १७१६ ई० में मार डाला गया। इन कष्टों ने सिक्खों को दुर्बल बनाने के स्थान पर उनको सुदृढ़ तथा शक्तिशाली बना दिया।

मुग़लों का रहन सहन—मुग़ल बादशाह स्वेच्छाचारी थे। परन्तु वह अपने से पहले शासकों की अपेक्षा अधिक सहनशील थे। ये साहित्य तथा कला के प्रेमी थे। बहुत से लोग, विशेषकर नीची जातियों के लोग, हिन्दू धर्म को छोड़ कर मुसल्मान हो गए।

प्रश्न

१. औरङ्गज़ेब की मृत्यु के बाद मुग़ल साम्राज्य के विध्वंस के क्या कारण थे?

२. संक्षेप में नादिरशाह के आक्रमण का विवरण दो और दिखाओ कि किस प्रकार उससे मुग़ल सत्ता को और भी धक्का लगा।

३. मुग़ल शासन-काल में सिक्खों के उत्थान पर एक छोटा-सा निबन्ध लिखो जिसमें गुरु गोविन्दसिंह के कार्य-कलाप का वर्णन विशेष रूप से हो।

४. मुग़लों के शासन-काल में भारत के लोगों के आचार व्यवहार का वर्णन करो।

५. निम्नलिखित विषयों पर संक्षिप्त नोट लिखो—
सय्यद बन्धु, बन्दा बैरागी, अहमदशाह अब्दाली।

मराठों का उत्थान

महाराष्ट्र देश—महाराष्ट्र पहाड़ी प्रदेश है। इसके असंख्य पर्वतों की चोटियों पर अभेद्य दुर्ग बने हुए हैं। देश का जल-वायु अच्छा और स्फूर्ति देने वाला है। पैदावार कम होती है। निवासी फुर्तीले, सहिष्णु और बिल्कुल सरल जीवन बिताने वाले होते हैं। तत्कालीन प्रबल धार्मिक आंदोलन ने इन लोगों पर बड़ा असर डाला और वे एकता के सूत्र में बँध गए। कवियों और सन्तों ने मराठों के हृदयों में प्रबल राष्ट्रीय भावना और अगाध धर्म-प्रेम उत्पन्न कर दिए थे। वे राजनैतिक स्वतन्त्रता का भी अलाउद्दीन के समय से काफ़ी उपभोग कर रहे थे; उन्हें मुसलमान बादशाहों ने अपने सैनिक और शासन सम्बन्धी मामलों में बड़ी संख्या में नौकर रख लिया था। उन्हें छत्रपति शिवाजी ने, जो एक जन्म-सिद्ध नेता था, एक झण्डे के नीचे "नौकर रहने के स्थान पर मालिक होने के लिए" प्रोत्साहित किया।

शिवाजी का प्रारम्भिक जीवन—शिवाजी अपने आप को देवगिरि के यादव शासकों और मेवाड़ के स्वाभिमानी राजपूत

हिन्दू-धर्म में दृढ़ विश्वास

राजाओं का वंशज बताता था। उसका पिता शाहजी एक निपुण मराठा सेनापति था जिसने दक्षिण की कई मुस्लिम रियासतों की सेवा की थी। शिवाजी ने "हिन्दू-धर्म का अगाध प्रेम अपनी माँ के दूध के साथ पिया था।" उसकी पवित्र और धर्मपरायण माता जीजाबाई ने उसमें बचपन से ही, वीरता की प्राचीन गाथाएं सुना २ कर, अपने देश और धर्म की रक्षा के लिए तलवार लेकर युद्ध करने का जोश पैदा कर दिया था। उसके शिक्षक दादोजी ने उसे हिन्दू आदर्शों के अनुसार शासन-कला में शिक्षा दी थी।

अपनी जन्म-भूमि के कष्टों को देख कर शिवाजी ने, जो अभी बीस वर्ष का भी नहीं हुआ था, दक्षिण से मुसलमान सल्तनत उखाड़ने के लिए सारे मराठों को एकत्र करने का दुष्कर कार्य्य अपने हाथों में लिया। उस समय मुग़लों ने बीजापुर पर चढ़ाई कर रक्खी थी। उसने इस अवसर से लाभ उठा कर आसपास के कई पहाड़ी क़िलों पर अपना अधिकार कर लिया और बहुत से मराठा सरदारों को दबाव से अपना मित्र और सहायक बना लिया।

प्रारम्भिक विजय कार्य

बीजापुर के साथ लड़ाई झगड़े (१६५७–६२)—उसकी बढ़ती हुई शक्ति से बीजापुर के कान खड़े हुए। उसके पिता को गिरफ्तार करके धमकी दी गई कि यदि उसका उच्छृङ्खल लड़का आत्मसमर्पण न करेगा तो उसे प्राणदण्ड मिलेगा। इस विपत्ति से छुटकारा पाने के लिए शिवाजी ने मुग़लों की सहायता ली और अपने पिता को छुड़ा लिया। अपने साहसपूर्ण कार्य्यों, प्रभावशाली व्यक्तित्व और अपने गुरु रामदास की सहायता से वह

अपने झण्डे के नीचे जनता को एकत्र करने में सफल हुआ। बीजापुर की सरकार ने उसके विरुद्ध अफ़ज़लखां नामक एक योग्य सेनापति की अधीनता में एक विशाल सेना भेजी। अफ़ज़लखां ने प्रतिज्ञा की थी कि वह विद्रोही को अवश्य लायेगा—मार कर या जीत हुआ। ख़ान उस प्रदेश की कठिनता को जानता था। अतः उसने शिवाजी के पास, भेंट करने के लिए, एक ब्राह्मण के हाथों सन्देशा भेजा। शिवाजी को अपने जासूसों और स्वयं ब्राह्मण से पता लग गया कि दाल में कुछ काला है। उसने धूर्तता का जवाब धूर्तता से देने की तय्यारी करके भेंट करने के लिए कूच किया। जिस समय अफ़ज़लखां शिवाजी को आलिंगन कर रहा था उसने उसकी गर्दन अपने पंजे में दबा ली और अपनी तलवार से उसका बध करने की तय्यारी की। पर उसका विरोधी उसका भी उस्ताद था। उसने अपने कपड़ों में से निकाल कर बाघनख और छुरा ख़ान के पेट में घोंप दिया। अब मराठा सेना भी निकल कर बीजापुर की सेना पर टूट पड़ी और उसे बिल्कुल छिन्न भिन्न कर दिया। कुछ पराजयों के बाद बीजापुर के बादशाहों को शिवाजी को उन प्रदेशों का शासक मानना पड़ा जिन्हें उसने कुछ सालों के भीतर जीत लिया था।

अफ़ज़लख़ां

मुग़लों के साथ लड़ाई—अब शिवाजी ने अपने पड़ोस के मुग़ल राज्य पर धावे करने शुरु किए। उसे दबाने के लिए औरंगज़ेब ने अपने चचा शाइस्ता ख़ां और राजा जसवन्तसिंह को भेजा। पर उन्हें इसमें कोई कामयाबी न हुई। जसवन्तसिंह ने एक

शाइस्ता ख़ां

Ahmad Shah Abdali
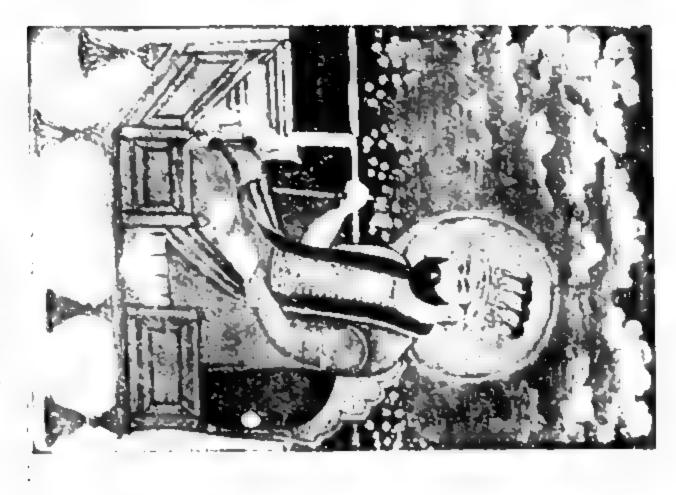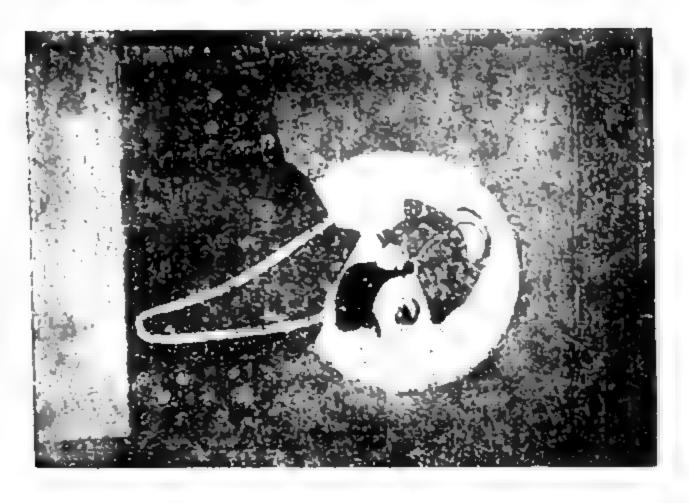
Nadir Shah

Sivaji

हिन्दू राजा की शक्ति को कुचलने में कोई उत्साह नहीं दिखाया। शिवाजी बड़े दु:साहस के साथ अपने संगी साथियों का एक बराती जलूस बना कर पूना में जा कर मुग़ल डेरे में घुस गया। शाइस्ताखां के हाथ की तीन अँगुलियां कट गईं और वह कठिनता से प्राण बचा सका। दूसरे साल शिवाजी ने सूरत को लूट डाला जिसमें उसे खूब धन मिला। इस पर क्रुद्ध हो कर बादशाह ने अपने परम योग्य सेनापति राजा जयसिंह को भेजा। उसने शिवाजी को अपने अधीन के बीस किले वापस कर देने और बीजापुर के विरुद्ध मुगल सेना की मदद करने पर राजी कर लिया। १६६६ में जयसिंह ने उसे यह प्रतीति दिला कर कि उसकी बड़ी आवभगत होगी, आगरे के दरबार में जाने को राजी कर लिया किन्तु आगरे में उसके साथ बड़ा शुष्क वर्ताव किया गया और उसे तीसरी श्रेणी के दरबारियों में स्थान दिया गया। दूसरे दिन उसने अपने आपको अपने मकान में कैद पाया। वह एक टोकरी में बैठ कर, जिसके बारे में सिपाहियों को विश्वास दिलाया गया कि उसमें दान देने के लिए मिठाइयां भरी हैं, भाग निकला, और साधु के वेश में सकुशल दक्षिण पहुँच गया।

मुग़ल दरबार में

शिवाजी का राज्याभिषेक—आगरे से वापस आने के बाद शिवाजी ने वह किले शीघ्रता से जीतने शुरू किए जिन्हें उसने औरंगज़ेब को सौंप दिया था, और कुछ नए प्रदेश भी फतह किए। १६७४ में उसका रायगढ़ में महाराष्ट्र के छत्रपति राजा की हैसियत से राज्याभिषेक किया गया। उसने दक्षिण विजय करके जिंजी और अन्य बहुत से मज़बूत किलों पर

अधिकार कर लिया और प्राचीन विजयनगर साम्राज्य के अधिकांश को अपने राज्य में मिला लिया। इस प्रकार वह औरंगज़ेब के साथ एक बार घोर युद्ध करने के लिए शक्ति को बढ़ाने में सफल हुआ। १६८० में ५३ वर्ष की आयु में वह परलोक को सिधारा।

दिवानी और फौजी शासन—शिवाजी में शासन व्यवस्था करने की योग्यता थी। उसका शासन-प्रबन्ध प्राचीन हिन्दू राज-नीति के अनुसार था। राजा के आठ सहायक मन्त्री होते थे जिन्हें अष्ट-प्रधान कहते थे।

अष्ट-प्रधान

मराठों के निजी देश पर जिसे वे स्वराज्य कहते थे, बड़े ध्यान और बुद्धिमत्ता से शासन किया जाता था। अन्य प्रदेशों से, जो मुग़लिया राज्य के नाम से प्रसिद्ध थे, और जिन्हें मराठे अपने प्रभुत्व में समझते थे, वार्षिक कर, चौथ और सरदेशमुखी लिए जाते थे। राज्य ने ऋण पर रुपये दे देकर कृषि को तरक्की दी। जागीरें प्रायः नहीं दी जाती थीं और सारे अधिकारियों को राजकोष से नियत समय पर वेतन मिलते थे।

शिवाजी एक स्थायी सेना हर दम तैयार रखता था जिसमें भिन्न भिन्न ओहदे थे। उसने समुद्री सेना के लिए भी काफी बड़ा बेड़ा बनाया। लूट मार का सारा माल राज्य को सौंप दिया जाता था।

सेना

शिवाजी का इतिहास में स्थान—शिवाजी का निजी जीवन बड़ा नैतिक और उच्च था। वह स्त्रियों का मान और सब धर्मों के धर्म-स्थानों की रक्षा करता था। उसकी कार्य-कुशलता को प्रोफ़ैसर सरकार के शब्दों में

हिन्दूधर्म का पुनरुत्थान

इस प्रकार संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है, "उसके जन्म से पहले मराठा जाति दक्षिण में छिन्न भिन्न दशा में थी। उसने उन्हें संगठित करके उनका एक सुदृढ़ राष्ट्र बना दिया और यह सब उसने इतनी विरोधिनी शक्तियों के रहते हुए किया था। उसने मराठा जाति में एक नया जीवन डाल दिया। शिवाजी सर्वथा एक महान् ऐतिहासिक व्यक्ति था।"

मुग़लों का महान् आक्रमण (१६८२–१७०४)—हम यह पहले ही कह चुके हैं कि दक्षिण में मुग़लों के महान् आक्रमण का संचालन स्वयं औरङ्गजेब ने किया था। पर जहां तक मराठों का सम्बन्ध है, उसकी सेना को सफलता नहीं हुई। एक महान साम्राज्य की सारी शक्ति से भी वे कुचले न जा सके। बादशाह के मरने के बाद वे अपने देश में स्वतन्त्र होकर उत्तर की ओर बढ़ने लगे।

साहू—शम्भू के पुत्र साहू को मुगलों की कैद से कई साल बाद छोड़ दिया गया। और उसने राजाराम की बिधवा ताराबाई से अपनी गद्दी का दावा किया। इस चतुर चाल से मुग़ल मराठों को घरेलू लड़ाइयों में फँसाना चाहते थे। कुछ बड़े बड़े मराठा सरदारों ने साहू का पक्ष लिया और शीघ्र ही साहू को अपना राजा मान लिया। पर उसमें अपने दादा शिवाजी की जैसी कर्मण्यता और सजीवता नहीं थी। उसने राज्य का भार अपने योग्य महामन्त्री पेशवा के हाथों में छोड़ दिया।

घरेलू युद्ध

बालाजी विश्वनाथ (१७०४१७२०)—प्रसिद्ध पेशवाओं में पहला पेशवा बालाजी विश्वनाथ हुआ जो ब्राह्मण था

उसकी आर्थिक व्यवस्था

और बड़ा योग्य शासक था। वह अपने दिल्ली गमन और नवीन आर्थिक व्यवस्था के, लिए जिनके कारण मराठा साम्राज्य की नींव नये सिरे से रक्खी गई थी, अब तक प्रसिद्ध है। उसे दिल्ली में सय्यद बन्धुओं ने बुलाया था, और उससे सहायता मिलने के पुरस्कार स्वरूप उसे दक्षिण के छः प्रदेशों में चौथ और सरदेशमुखी लगाने का अधिकार दे दिया गया था। विभिन्न नेताओं को एक लक्ष्य के लिए सङ्गठित करने के लिए उसने एक नई युक्ति से काम लिया जिसके द्वारा वे बहुत दिनों तक एक रहे। चौथ का ६६ प्रति सैकड़ा स्थानिक नेताओं को इस शर्त पर दिया जाता था कि वे घुड़सवारों की एक नियत संख्या को तैयार रक्खेंगे। जो जागीरें दी जातीं वे मराठा राज्य के भिन्न भिन्न भागों में होती थीं। चौथ के लालच में सेनापति अपने इलाके को और भी बढ़ाने का प्रयत्न करता था। पर आगे चल कर यह व्यवस्था दुर्बलता का साधन हुई क्योंकि फिर शक्तिशाली सरदार मध्यस्थ पूना सरकार के आदेशों की उपेक्षा करने लगे।

बाजीराव (१७२०-१७४०), उसकी आगे बढ़ने की नीति— बालाजी के बाद उसकी जगह उसका पुत्र बाजीराव

सबसे योग्य पेशवा

नियुक्त हुआ जो सारे पेशवाओं में सबसे अधिक योग्य था। वह मुगल साम्राज्य के केन्द्र-स्थल दिल्ली पर आक्रमण करने की अग्रसर नीति का समर्थक था। वह कहा करता था—"जड़ पर कुल्हाड़ी चलाओ और सूखी हुई टहनियां आप ही गिर पड़ेंगी।" उसने गुजरात और मालवा को रौंद डाला, बुन्देलखण्ड पर अधिकार कर लिया, निजाम
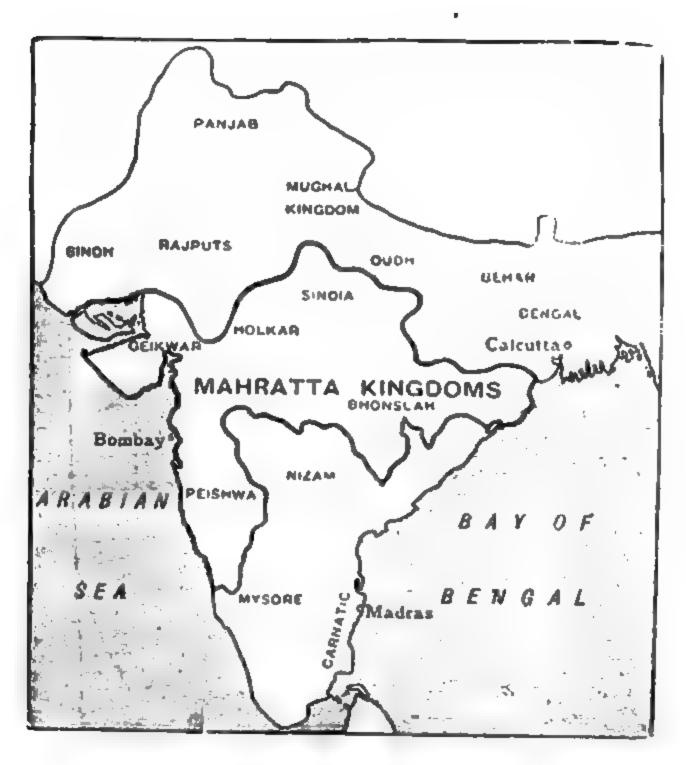
The Marathas
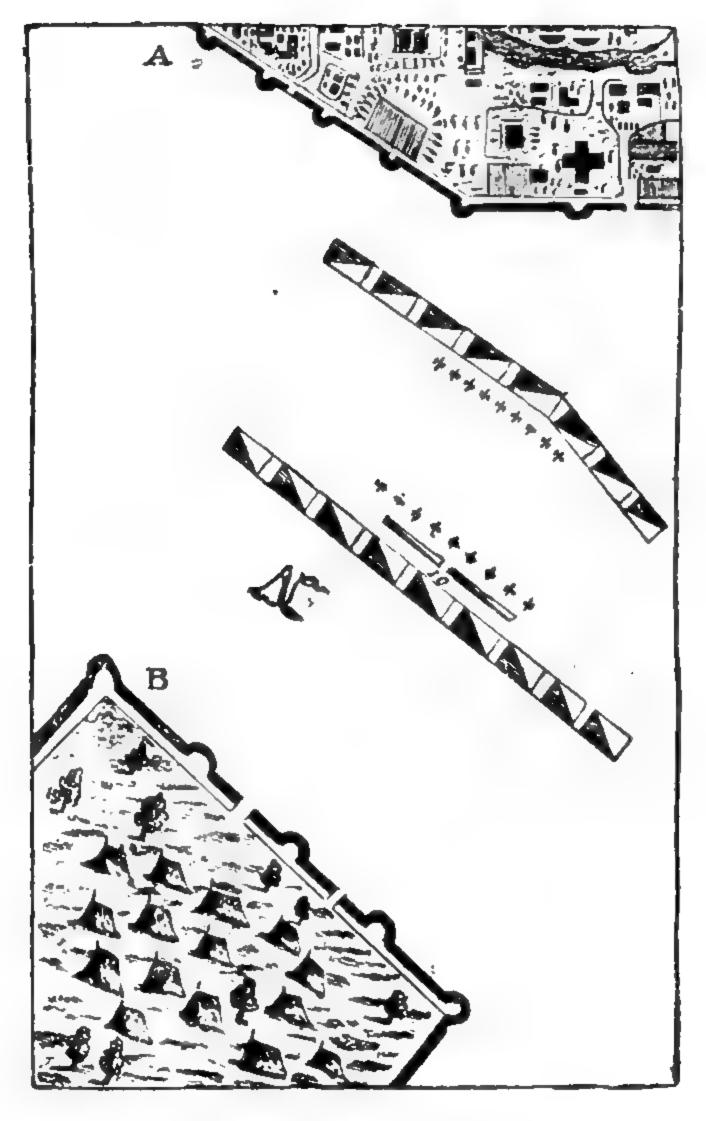
Third Battle of Panipat
A. The Maratha Camp
B. The Camp of Ahmad Shah

विजय

को परास्त किया, और पुर्तगीजों से पेसीन का द्वीप छीन लिया। जब १७४० में इस पेशवा की मृत्यु हुई तो मराठा शक्ति का परम उत्थान होचुका था।

बालाजी बाजीराव—उसके बाद उसका पुत्र बालाजी बाजीराव पेशवा बना जिसके प्रबन्ध में मराठों ने पूर्ण शक्ति प्राप्त की। बड़े बड़े सेनापति अपने अपने प्रदेशों में बराबर वृद्धि करते जाते थे। राघोजी भोंसले, पिलाजी गायकवाड़, मल्हारराव होल्कर और रानोंजी सिंधिया—बड़े सुयोग्य सेनापति थे जिन्होंने आगे चल कर क्रम से नागपुर, बड़ौदा, इन्दौर और ग्वालियर के राज्य कायम किए।

मराठा सङ्घ

राघोजी भोंसले ने मध्य भारत को रौंद डाला और बङ्गाल पर लगातार धावे करके नवाब को उसे उड़ीसा सौंप देने और बङ्गाल और बिहार में चौथ और सरदेशमुखी लगाने की अनुमति देने पर बाध्य किया। मराठा सेनाओं ने पंजाब पर अधिकार कर लिया और उनका गेरुआ झण्डा अटक के किले पर गर्व के साथ फहराने लगा।

मराठा शक्ति का विस्तार

पानीपत की तीसरी लड़ाई (१७६१)—अब देश में मराठों का ही दौर दौरा था और सारे देश का स्वामी बनना उनकी मुट्ठी में मालूम पड़ता था। बहुत से मुसल्मान राजाओं ने उनके विरुद्ध अहमदशाह अब्दाली नामक एक सुयोग्य सेनापति और अनुभवी शासक का साथ दिया। मराठों ने भी अपनी सारी

अहमदशाह अब्दाली

शक्तियां इकट्ठी कीं। पानीपत के ऐतिहासिक स्थान पर खूब घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओर से बड़ी-बड़ी सेनाएँ थीं। मराठों ने अपनी पुरानी युद्ध नीति को त्याग दिया था और अब उन्हें जम कर युद्ध करने में असफलता हुई। अहमदशाह अब्दाली ने उनकी सेना का राज्य से सम्बन्ध तोड़ डाला था; अतः फ़ाक़ों कीनौबत पहुंचने पर वह पहले आक्रमण करने पर बाध्य हुए। घोर युद्ध के बाद अफ़गानों की पूरी विजय हुई मराठों को बड़ी क्षति उठानी पड़ी।

मराठों की हार

इस पराजय से मराठों की राष्ट्रीय शक्ति पर बड़ा आघात पहुँचा। यद्यपि इस हार की अधिकांश कमी मराठा सरदारों ने कुछ ही सालों में पूरी कर ली थी, पर इस भयंकर आघात के बाद पेशवा फिर नहीं उठ सके। और केन्द्रित-शक्ति के दुर्बल होते ही महारष्ट्र की छिन्न-भिन्न शक्तियां को एकत्र करने योग्य सूत्र भी टूट गया। इसका फल यह हुआ कि वे अपने सबसे अधिक शक्तिशाली शत्रु अंग्रेज़ों का सब मिल कर सामना नहीं कर सके और उन सब को एक-एक करके जीत लिया गया।

सारांश

शिवाजी का आरम्भिक जीवन—शिवाजी के पिता का नाम शाहजी था, यह एक मरहट्टा सेनापति था, उसकी माता जीजाबाई उसे प्राचीन हिन्दुओं की वीरता तथा धर्म्म प्रेम की कहानियां सुनाया करती थी, छोटी आयु में ही वह मराठा मंडली का नायक बन गया और कई पहाड़ी किले उसने अपने अधिकार में कर लिये। शिवाजी के इस कार्य्य से बीजापुर का बादशाह बहुत भयभीत हुआ और उसने शिवाजी को दण्ड देने के लिए अफ़ज़लखां को भेजा। शिवाजी

ने बड़ी चतुराई से काम लिया और उसे मारडाला।

मुग़लों से युद्ध—इन विजयों के बाद शिवाजी ने मुग़लों के देश पर आक्रमण करने आरम्भ कर दिये। औरंगजेब ने इसके दमन के लिए शाइस्ताखां को भेजा परन्तु उसे सफलता प्राप्त न हुई और बड़ी कठिनाई से जान बचाकर भागा। उसके बाद फिर राजा जयसिंह को भेजा गया और इस बार शिवाजी को अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसे शाही दबार में जाना पड़ा और वहां उसे शाही बन्दी बना लिया गया परन्तु वह बड़े चातुर्य और फुर्ती के साथ बन्दी खाने से निकल गया। आगरा से लौटते ही शिवाजी ने अपने खोए हुए प्रान्त लौटा लिये और १६७४ ई० में बड़े सज धज से हिन्दू रीति के अनुसार राजगद्दी पर बैठा। १६८० ई० में शिवाजी परलोक सिधारे।

शिवाजी कीशासन प्रणाली—शिवाजी ने अपनी सहायता के लिये आठ मन्त्रियों की एक सभा नियत की हुई थी जिसे अष्टप्रधान कहते थे। मरहट्टा साम्राज्य जिलों में विभक्त थी। प्रत्येक जिला एक अधिकारी को सौंपा गया था। जिसने नियमानुसार और स्थाई सेना रक्खी हुई थी। जो भिन्न-भिन्न दर्जों के अधिकारियों के आधीन थी। उसने एक जंगी बेड़ा भी तय्यार किया था।

मुग़लों के विरुद्ध युद्ध काल में शिवाजी का पोता साहु मुग़लों के पास बन्दी रहा। १७०८ ई० में उसे मुक्त कर दिया गया। वह विलास प्रिय तथा आलसी था इसलिये उसने राज का सारा कारोबार अपने मन्त्री अथवा पेशवा बालाजी को सौंप रक्खा था।

पेशवा—१ बाला जी विश्वनाथ १७१४ से १७२० ई० बालाजी विश्वनाथ एक ऊँची जाति का योग्य पुरुष था। वह देहली पर आक्रमण करने तथा अपनी आर्थिक दशा सुधारने के कारण प्रसिद्ध है। सय्यद भाइयों को भी उसकी सहायता की आवश्यकता पड़ी थी।

(२) बाजीराव १७२० से १७४० ई० तक—बाजीराव एक बड़ा विजयी था इसने गुजरात, मालवा तथा बुन्देलखण्ड विजय किए।

(३) बालाजी बाजीराव १७४० से १७६१ ई०—बालाजी बाजीराव के समय में मराठों की शक्ति उन्नति के शिखर पर पहुँची हुई थी। मराठा सेनापति चारों ओर अपने साम्राज्य में नये प्रान्त सम्मलित कर रहे थे। १७६१ ई० में अहमदशाह अब्दाली ने जो कि मराठों के पंजाब पर आक्रमण करने के कारण उनसे असन्तुष्ट हो गया था, एक बड़ी भारी सेना लेकर उनके विरुद्ध चढ़ाई की और उनको पानीपत की तीसरी लड़ाई में पराजित किया। यह केवल एक साधारण हार नहीं थी बल्कि जातीय आपदा थी।

प्रश्न

१. मराठे कौन थे? शिवाजी के नेतृत्व में उन्होंने किस प्रकार शक्ति प्राप्त की?

२. शिवाजी के शासन-प्रबन्ध की व्यवस्था का हाल लिखो और साबित करो कि योद्धा होने के अतिरिक्त वह एक योग्य शासक भी था।

३. पेशवाओं ने शक्ति किस प्रकार प्राप्त की? मराठों को एक महाशक्ति बनाने में बालाजी विश्वनाथ और बाजीराव ने क्या क्या काम किया?

४. पानीपत की तीसरी लड़ाई का संक्षिप्त विवरण लिखो। इतिहास में उसका क्या महत्व है?

५. निम्नलिखित विषयों पर छोटे-छोटे नोट लिखो।

अफ़ज़लखां, अष्ट-प्रधान, चौथ, शाइस्ताखां, अहमदशाह अब्दाली।